TO THE READER.

KINDLY use this book very carefully. If the book is disfigured or marked or written on while in your possession the book will have to be replaced by a new copy or paid for. In case the book be a volume of set of which single volume are not available the price of the whole set will realized.

SRI PRATAP COLLEGE,

SRINAGAR.

LIBRARY

Class No. 891.433

Book No. K92K

Accession No. 17768

कृष्ण

कश्मीर [illegible] कहानियाँ

प्रकाशक

राजपाल एण्ड संज़

कश्मीरी गेट

देहली

मूल्य

तीन रुपये

891.433
K 92 K

Acc. No. 17768

मुद्रक

युगान्तर प्रेस,

डफ़रिन पुल, दिल्ली

विषय-सूची

दो शब्द

मैंने कश्मीर के सम्बन्ध में बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं। उसके हुस्न के सम्बन्ध में, उसकी बदसूरती के सम्बन्ध में, उसके जागीरदाराना माहौल और उसकी लूट-खसोट के सम्बन्ध में। ये कहानियां मैं बराबर लिखता आया हूँ और आज भी, जब कश्मीर एक अजीब दर्दनाक सूरत-हालात से दो-चार है, मैं कश्मीर से सैंकड़ों मील दूर रहकर भी उसके सम्बन्ध में लिखने पर मजबूर हो गया हूँ। अगली-पिछली कहानियों पर नज़र डालते हुए मैंने यह महसूस किया कि एक ऐसे संग्रह की सख़्त ज़रूरत है जिसमें कश्मीर सम्बन्धी उन तमाम कहानियों को जमा करूँ जो कश्मीर के समाजी जीवन के विभिन्न पहलुओं की चित्रकारी करते हुए आज को परिस्थितियों के प्रगतिशील पहलुओं को उजागर करने में सहायक हो सकें। यह संग्रह उसी ज़रूरत का नतीजा है। इस संग्रह में मैंने कश्मीर-सम्बन्धी कहानियों को इसी ढंग पर रक्खा है।

सबसे पहले जो कहानी मैंने लिखी वह कश्मीर के जीवन के सम्बंध में थी। फिर मैंने और कहानियां भी कश्मीर के सम्बन्ध में लिखीं। ये कहानियाँ लोगों ने बहुत पसन्द कीं और इसी पसन्दीदगी ने मेरी हिम्मत बढ़ाई कि मैं आगे चलकर कश्मीर के विषय पर बहुत कुछ लिख सकूँ। कुछ लोगों का ख़याल है कि मेरी कहानियाँ इसलिये इतनी अधिक पसन्द की गईं कि कश्मीर के सौन्दर्य का वर्णन इन कहानियों में बड़ी सफलता के साथ हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं कश्मीरी

स्वभाव और कश्मीरी जनता के हुस्न से बेहद प्रभावित हुआ हूँ और मैंने शुरू की कहानियों में इस बात की पूरी कोशिश की कि यह हुस्न और उसकी सारी रूह खिंचकर मेरी कहानियों में समा जाय, लेकिन इसके साथ-साथ मुझे इन नयनाभिराम दृश्यों के अन्दर वह बदसूरती और ज़ालिमाना दुख-दर्द भी मिले जिसको यदि मैं जगह-जगह अपनी कहानियों में प्रकट न करता तो शायद इन कहानियों में वह ज़िन्दगी और गति न मिलती जिसने जनता को इतना प्रभावित किया। कला के सौंदर्य का रहस्य सौन्दर्य के वर्णन में नहीं है, सौन्दर्य और बदसूरती की तुलना में है, उस कशमकश में है जो एक ख़ूबसूरत और हसीन माहौल और जागीरदाराना व्यवस्था की पैदा की हुई गन्दगी से सम्बन्ध रखती है।

मेरे बचपन की हसीनतरीन यादें, जवानी के बहुमूल्य क्षण कश्मीर से सम्बंधित हैं। मैं कश्मीर में बहुत घूमा हूँ, महीनों किसानों के घरों में रहा हूँ, उनके साथ रहकर मैंने आम इन्सानों की ख़ुशियाँ और उनके दुख देखे हैं, उनकी ग़रीबी और जहालत को चखा है और उनके अंध-विश्वास का बोझ उठाया है, उनकी उदारता और पड़ोसियों के प्रति उनके प्रेम को महसूस किया है, प्रकृति से उन्हें जो शायराना प्यार है उसके मधुरतम स्पर्श ने मेरी आत्मा को छुआ है और यहाँ मुझे इस बात को भी स्वीकार करना है कि यदि मैं यह सब कुछ इतने क़रीब से न देखता तो शायद मैं बहुत अरसे तक इन्सान की बुलन्दी और उसकी महानता से अपरिचित रहता। शायद मैं कभी कहानियाँ न लिखता, शायद मेरे मन में अपने देश और उसके लोगों के लिये प्रेम और वफ़ा का वह भाव कभी जागृत न होता जिसके बिना इन्सान इन्सान नहीं बन सकता। यह बिलकुल सही है कि मेरी कला जनता की देन है, मेरी अनुभूति का स्रोत यही मेहनतकश जनता है जिसने मुझे सामाजिक अनुभूति के क ख ग से आगाह किया। जनता को छोड़कर कोई कला नहीं है, कोई कहानी नहीं है। जीवन में सुन्दरता और सत्य,

ईमानदारी और पाकीज़गी और बड़ाई जनता से आती है। इस मामले में मैं जनता को अपना गुरु समझता हूँ और उन्हीं के आगे आदर और श्रद्धा से अपना सर झुकाता हूँ।

जब मैंने आँखें खोलीं तो कश्मीर पर जागीरदारी का राक्षस अपने खूनी पंजे गाड़े पूर्णरूप से छाया हुआ था। मैंने अपनी इन आँखों से डोगरा-राज के अत्याचारों को देखा है। किस तरह हल चलाते हुए किसान अपने खेतों से घसीट कर बेगार पर भेज दिये जाते थे। किसान घर से अपने खेतों में हल चलाने के लिये आया है और दूसरे ही क्षण वह वहाँ से ग़ायब है और दस दिन तक उसके घर वालों को यह पता नहीं चलता कि वह कहाँ है, किधर गया है, जीवित है या मर गया है। खेतों में चलते-चलते अचानक रुक जाने वाले बैल किसान की किसी मंज़िल का सुराग़ नहीं देते थे।

मैंने ऐसे जागीरदार भी देखे हैं जो कश्मीरी किसानों के गाँव में पहुँचते, सारे गांव के तमाम मर्द, औरतों और बच्चों तक को बँधवाकर अपने सामने मैदान में उनकी पिटाई कराते। इसके बाद रात-रात भर मर्दों को पेड़ों से बाँधे रखते और सुन्दर स्त्रियों को बिना धर्म या जाति-भेद के अपनी और अपने दोस्तों और अहलकारों की हविस का निशाना बनाते। इसमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी स्त्रियाँ शामिल होतीं। हाँ मुसलमान स्त्रियाँ अधिक संख्या में होतीं क्योंकि कश्मीर में मुस्लिम जनता पिचानवे फ़ीसदी है। सिर्फ़ डोगरा घरों को छोड़ दिया जाता, क्योंकि डोगरे आमतौर पर जागीरदार होते थे। लेकिन जम्मू और ऊधमपुर के इलाक़े में जो डोगरे जागीरदार नहीं थे बल्कि मामूली किसान थे वे कश्मीर के राजा की जाति के होते हुए भी उसी तरह ग़रीब थे और उनकी स्त्रियों की लाज के साथ वही सलूक किया जाता था जो दूसरों की स्त्रियों के साथ किया जाता था। चाहे वह हैदराबाद की मुस्लिम जागीरदारी हो या कश्मीर की हिन्दू जागीरदारी, उनकी अकड़, नशा, व्यवहार, सामाजिक मेल-जोल, ज़ुल्म करने का दस्तूर

बिलकुल एक-सा है। ये धर्म को स्त्रियों की लाज लूटने के लिये इस्तेमाल करते हैं, आत्मा को शुद्ध करने के लिये नहीं। मुझे आश्चर्य उन साहित्यिकों पर होता है जो आज भी इस परिस्थिति को जायज़ समझते हैं और उसकी हिमायत करते हुए ज़रा नहीं शर्माते।

कश्मीरी जनता अंग्रेज़ी सरकार से ख़रीदी गई थी इसलिये डोगराशाही जागीरदाराना शासन-व्यवस्था में इन ज़रख़रीद ग़ुलामों की अपनी कोई ज़िन्दगी नहीं थी, उनकी स्त्रियों, बच्चों, बहू-बेटियों की अपनी कोई इज़्ज़त नहीं थी, उनके खेत अपने नहीं थे, उनकी अपनी मेहनत अपनी नहीं थी। यह व्यवस्था अत्याचार और हिंसा पर क़ायम थी। इस व्यवस्था को क़ायम रखने वाले डोगरे अहलकार थे, डोगरा फ़ौज थी, और पंजाबी हिन्दू बनिये और मुसलमान ख़्वाजे थे और ये बनिये और लाले और ख़्वाजे, डोगरे और पंजाबी अहलकारों से मिलकर ग़रीब जनता को लूटते थे और जब कभी जनता विद्रोह करती तो डोगरा फ़ौज उनके सर कुचलने को सदा तैयार रहती। यों तो हर साल जब अहलकार लोग दौरा करते, यह ज़ुल्म और अत्याचार होता रहता। पके हुए फल, पकी हुई औरतें, पकी हुई फ़सलें, हर चीज़ पर जागीरदारी का लगान था, मालिया, महसूल, चुङ्गी, नज़राना और सूद था और यह सूद-दर-सूद बढ़ता चला जा रहा था; इस पर भी मेहनत करने वाला किसान ज़िन्दा था। वह मेहनत करता था और लुटता था, फिर भी ज़िन्दा था और लड़ाई करता था। मार खाता था और मार सहता था, फिर भी लड़ता था। सहम-सहम कर लड़ता था पर दांव लगने पर कोई वार ख़ाली नहीं जाने देता था। यह लड़ाई अक्सर व्यक्तिगत और असंगठित रूप में होती, पर होती ज़रूर थी। वह लड़ता था और गीत भी गाता था और जहाँ तक हो सके अपनी स्त्रियों, बच्चों, बहू-बेटियों की रक्षा भी करता था। अक्सर नाकाम रहता, कभी-कभी कामयाब भी हो जाता। मेरी शुरू की कहानियों में आप को इन व्यक्तिगत लड़ाइयों का सुराग़ मिलेगा, उसकी

नाकामियों की चर्चा भी बहुत होगी और झुंझलाहट और निराशा और कुचली हुई ज़िन्दगी पर दया और तरस का भाव भी विशेष रूप में मिलेगा।

इसके बाद वह दौर आया जब धीरे-धीरे कश्मीरी जनता संगठित होने लगी और अपने मौजूदा नेताओं को मोहरा बनाकर आगे चली। उस ज़माने में उन्होंने बड़ी बे-जिगरी से अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ी और कई मोर्चे फ़तह कर लिये। शुरू-शुरू में उन्हें ज़ुल्म और अत्याचार के कड़े वार सहने पड़े, कई बार ये आन्दोलन बड़ी सख़्ती से दबा दिये गये या साम्प्रदायिक आग में झुलसा दिये गये। लेकिन वास्तव में यह आन्दोलन साम्प्रदायिक आंदोलन न था। कुचली हुई जनता के आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक जीवन को बेहतर बनाने और उसे सँवारने का आन्दोलन था, इसलिये साम्प्रदायिकता की आग भी उसे जला न सकी और कश्मीरी जनता यूं एक मुट्ठी की तरह संगठित हो गई कि जागीरदारी व्यवस्था हमला करने की जगह रक्षात्मक कार्रवाई के लिये मजबूर हो गई।

इस दौर में कश्मीरी जनता ने क़रीब-क़रीब बेगार का ख़ात्मा कर दिया, जागीरदारी के बहुत से महसूलों से ख़लासी पा ली, अलग-अलग इलाक़ों के लोग एक दूसरे से क़रीब होते गये, कश्मीरी राष्ट्रीयता की भावना ज़ोर पकड़ती गई, ज़ालिम अहलकारों को ख़त्म किया गया और शिक्षा के लिये सुविधायें प्राप्त की गईं। यह कश्मीरी किसानों के आगे बढ़ने का ज़माना था। मैंने इस दौर में कश्मीरी किसानों के चेहरों पर विजय की लाली देखी है, उन्हें ज़िन्दगी में पहली बार अपने लूट-खसोट करने वालों के सामने गर्व से सर उठाकर चलते हुए देखा है, पहले किसान अहलकारों को सलाम करते थे और उनकी ख़ुशामद करते थे, अब स्थानीय अहलकार किसानों से डरते थे और उनकी चापलूसी करते थे और जागीरदारों ने अपने छोटे-छोटे पहाड़ी किलों में पनाह ले ली थी और अब वे प्रजा

को पिंडारों की तरह नहीं लूट सकते थे बल्कि अपने घरों के अन्दर दुबके बैठे उचित अवसर की खोज में थे। पहले वे जनता को क़ैद किया करते थे, अब जनता ने उनको क़ैद कर दिया था। जागीरदारी व्यवस्था का अन्त नहीं हुआ था लेकिन यह व्यवस्था अपने ऊपर जनता की लोहे की बेड़ियों की चमक ज़रूर महसूस करने लगी थी।

इसके बाद तीसरा दौर आता है जब कश्मीरी जनता पुरानी सरकार की बिसात को उलटने ही को थी और प्रजातन्त्र राज स्थापित करने जा रही थी कि हिन्दुस्तान विभाजित हो गया और चन्द जागीरदारों और पूँजीपतियों ने अँग्रेज़ साम्राजियों की छत्रछाया में, उनकी सहायता से, उनके हथियारों से, उनकी पुश्तपनाही में देश को दो भागों में बाँट लिया। एक क़ौमियत (राष्ट्रीयता) के आधार पर नहीं, क्योंकि दोनों देशों में एक से अधिक क़ौमें रहती हैं; एक भाषा के आधार पर नहीं, क्योंकि दोनों देशों में एक से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं; एक धर्म की बुनियाद पर नहीं, क्योंकि दोनों देशों में विभिन्न धर्मों के मानने वाले रहते हैं; एक शासन-व्यवस्था के विरुद्ध नहीं, यह नहीं कि यहाँ शुद्ध हिन्दू राज्य है और वहाँ ख़ालिस इस्लामी हुकूमत, यह बँटवारा ख़ालिस साम्राजी सिद्धान्तों पर किया गया, यानी यह तिजारती मंडी मेरी है और वह तिजारती मंडी तुम्हारी, इस कच्चे माल पर मेरा अधिकार है उस पर तुम्हारा, इधर भी पूंजीपति और जागीरदार थे उधर भी पूंजीपति और जागीरदार। जनता भेड़ों की तरह बाँटी गई और इस महान् धोखे का नाम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की आज़ादी रखा गया और जनता की बढ़ती हुई जमहूरी तहरीक को जो R. I. N. के विद्रोह से शुरू हुई थी खड्डे में डाल दिया गया और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बँटवारे से पहले और बँटवारे के बाद घरेलू झगड़ों को बढ़ावा दिया गया ताकि भोली जनता भूल जाय कि उनका असल दुश्मन कौन है।

आज कश्मीर भी उसी घरेलू युद्ध में फँसा है। जम्मू के ग़रीब

डोगरे और मुसलमान, कश्मीर की घाटी के ग़रीब किसान और पुंछ, हंडर बाग़ और पलंदरी के स्वाभिमानी फ़ौजी और किसान इस गृह-युद्ध में झोंक दिये गये हैं। एक तरफ़ पाकिस्तान की फ़ौजें हैं दूसरी तरफ़ हिन्दुस्तान की फ़ौजें हैं और उनके ऊपर ऐंगलो-अमरीकी साम्राज्य के रक्षक हैं जो कश्मीर की क़िस्मत का फ़ैसला करने आये हैं। जिस तरह उन्होंने पश्चिमी कोरिया और यूनान की क़िस्मत का फ़ैसला किया है उसी तरह का फ़ैसला आज वह कश्मीर में कर रहे हैं। क्योंकि कश्मीर की बदक़िस्मती यह है कि जिस तरह यूनान की सीमा साम्यवादी योरुप से मिलती है उसी तरह कश्मीर की सीमा साम्यवादी रूस से मिलती है। इसीलिये बिल्लियों को लड़वा दिया गया है और साम्राज्यवाद बन्दर की तरह तराज़ू पकड़े बैठा है और रोटी ख़ुद हड़प कर जाना चाहता है।

लेकिन कश्मीर रोटी नहीं है। वह तो जीते-जागते इन्सानों की सरज़मीन है—वे लोग, जो महसूस करते हैं, खाते पीते हैं, प्रेम करते हैं, और अपने मुल्क से मुहब्बत करते हैं। उन लोगों को अपनी तक़दीर ख़ुद बनाने का हक़ है। संसार के सारे शान्तिप्रिय लोगों को यह पूछने का अधिकार है कि क्यों लद्दाख़ और गिलगित में विरोधी हवाई अड्डे बनाये जा रहे हैं, क्यों अमरीकी फ़ौजी अफ़सर कश्मीर की घाटियों के फ़ोटो ले रहे हैं, क्यों आज कश्मीर के सीने के अन्दर भी वही ख़ून की सुर्ख़ लकीर खींची जा रही है जिसने एक बार पहले भी हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच ख़ून के दरिया बहाये हैं। आज क्यों बारा-मूला और तारावल की घाटियों के लोग, दोनों किसान के बेटे होकर, एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। क्या वे यह समझते हैं कि कश्मीर की क़िस्मत विदेशी फ़ौजों की संगीनों से सँवरेगी। उसे तो कश्मीर के किसान का हल और उसकी हँसिया ही जगायेगी। आज पेशावर के बाज़ारों में और अमृतसर की गलियां में कश्मीर की कुमारियाँ तीस-तीस रुपये में बिकी हैं। उन में इन कहानियों की

रेशमाँ भी होगी और ज़ेनी भी, बाली भी और नूरनशाँ भी। आज विदेशी हमलावरों ने मेरी कहानियों का लोहू पीया है, उन्हें कोड़े लगाये हैं, उनको लाज लूटी है। मैं कैसे समझ लूं कि कश्मीर के मामले में उनकी नीयत नेक है?

दरअसल सवाल नीयत का नहीं, सवाल अमल का है और जनता के हाथों में इन्क़लाबी शक्तियों की बागडोर थमा देने का है। इस वक़्त कश्मीर का फ़ैसला कश्मीर की जनता के हाथ में नहीं। लेकिन आख़िरकार यह फैसला जनता को करना है। जब तक कश्मीर की जनता खुद एक होकर आगे नहीं बढ़ेगी और इन्क़लाबी ताक़त अपने हाथों में लेकर यह नहीं कहेगी कि हम अपने देश के स्वयं रक्षक हैं, हमें किसी की फौजी मदद की ज़रूरत नहीं है, हर एक की दोस्ती की ज़रूरत है, हमें अमरीकी और बरतानवी रक्षकों की ज़रूरत नहीं है, हमें लद्दाख और गिलगित में फ़ौजी अड्डे नहीं चाहिये। पूँछ, रावलकोट और पलखेरी का किसान भी उतने ही ग़रीब, मज़बूत और लाचार हैं और इसलिये उसकी आवश्यकतायें भी वही हैं जो जम्मू के ग़रीब डोगरे और अनन्तनाग के देहाती मुसलमान की। इसलिये कृपा कर आप सब लोग यहां से तशरीफ़ ले जाइये, हमें आपकी कोई ज़रूरत नहीं, हम खुद अपने घर का इन्तज़ाम करेंगे।

इसके लिये कश्मीरी जनता को एक होना होगा, खुद लड़ना होगा और इस लड़ाई में अपना सम्बन्ध हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और दूसरे देशों की प्रगतिशील पार्टियों से जोड़ना होगा, क्योंकि आज कश्मीर की लड़ाई दुनिया की सारी तरक्कीपसन्द ताक़तों की लड़ाई है। यह वही खेल है जो यूनान, वीटनाम, इन्डोनेशिया, मलाया और बर्मा में खेला जा रहा है। मोहरें और चालें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कहीं-कहीं बदली नज़र आती हैं, पर दाव वही एक है—साम्राजी लूट।

—कृष्ण चन्द्र

: १ :

जेहलम में नाव पर

गाटियालियां तक सफ़र अत्यन्त कष्टप्रद रहा। लारी मुसाफ़िरों से खचाखच भरी हुई थी और सूरज की गर्मी ने और भी उमस पैदा कर दी थी। मैं दरमियाने दर्जे में बैठा हुआ था (अब लारी वालों ने भी रेलवे की तरह विभिन्न दर्जे बना दिये हैं) और अपनी क़िस्मत को कोस रहा था कि कोई कार नहीं मिली; नहीं तो रास्ता आसानी से कट जाता। वैसे भी सारी लारी में दिलचस्पी का कोई सामान न था। मेरे दाईं तरफ़ मोर की तरह तुर्रा फैलाये हुए एक थानेदार साहब विराजमान थे जो बार-बार मूछों को ताव देते जाते थे। सब से आगे पहले दर्जे की सीट पर अर्थात् ड्राइवर के बिलकुल पास एक तहसीलदार साहब बैठे थे जिनकी हँसती पेशानी और ढीले साफ़े से उनके मानसिक सन्तोष का पता चलता था। मेरे सामने की सीट पर चार औरतें बैठी थीं। दो बिलकुल बूढ़ी थीं और अधेड़ आयु की थीं; किन्तु जो औरत मेरे बिलकुल सामने बैठी और जो अपनी गोद में एक छोटे से बच्चे को लिये थी, वह बाक़ी औरतों से उम्र में कम और अधिक बदसूरत थी। वह कभी-कभी घूँघट की आड़ से मुझे देख लेती थी। इस संसार में हर व्यक्ति एक हसीन की तलाश में है। यह तो मैं दावे से नहीं कह सकता कि मैं उसकी आँखों में जँच गया, लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं कि मैं भी एक हसीन की तलाश में था। मैंने टाई की गांठ ठीक की और लारी के अन्दर चारों तरफ़ निगाह दौड़ाई। लेकिन, आह!

उस मुसाफ़िरों से भरी हुई लारी में, जो अपनी मंज़िल की ओर बेतहाशा भागी जा रही थी, मुझे कहीं भी रोमान्स नज़र न आया। विरक्त चेहरे थे और हुक़्क़े, या फिर थानेदार साहब का मोर्छल। मैंने एक क्षण के लिये अपनी आँखें बन्द कर लीं और मन ही मन में कहा, कि इस लारी में सब कुछ है पर हुस्न नहीं है। दूसरे क्षण जब मैंने आँखें खोलीं तो देखा कि कम उम्र बदसूरत औरत अपने छोटे बच्चे पर झुकी हुई उसे अत्यन्त मद्धम स्वर में मेरी गोद में चले जाने को कह रही थी।

उसने अपने सांवले माथे से पसीने की बूँदें पोंछकर घुटे हुए स्वर में कहा—"आह! मैं कितनी थक गई हूँ, मेरी सांस घुटी जाती है।"

बेचारी ग़रीब औरत! मेरा मतलब यह है कि यद्यपि उसने रेशमी वस्त्र धारण कर रक्खे थे और अत्यधिक कुरूप थी फिर भी औरत स्वभावतः ग़रीब और कमज़ोर होती है। अतएव मैंने छोटे बच्चे को अपनी रानों पर ले लिया।

औरत ने कृतज्ञ दृष्टि से मेरी ओर देखा, फिर खिड़की से मुंह बाहर निकाल कर क़ै करने लगी।

'इश्क़ की मजबूरियां लाचारियां' मैंने जल्दी से बच्चे को थानेदार साहब की गोद में ढकेल दिया और खुद उठकर ड्राइवर को लारी ठहराने के लिये कहा।

ड्राइवर बोला—"सरकार, यहाँ लारी ठहराने से क्या फ़ायदा। बस गाटियालियां का घाट कोई पौन मील रह गया है, वहीं ठहराऊँगा। कस्टम की चौकी पर, नदी के किनारे। नदी की ठंडी हवा से इनका जी ठीक हो जायगा।"

अतएव यही हुआ।

गाटियालियां और जेहलम नगर के बीच जेहलम नदी बहती है, इसलिये जेहलम नगर को जाने के लिये गाटियालियां की चुँगी पर प्रायः हर समय भीड़ सी लगी रहती है। रियासत जम्मू को जाते हुए

मुसाफ़िरों का तांता, रियासत जम्मू से जेहलम आये हुए लोग, असबाब से लदे हुए बैल या गधे, चुँगी पर ठहरी हुई अनगिनत लारियाँ और नदी के किनारे बँधे हुए लम्बे-लम्बे मछुए एक छोटे से बन्दरगाह का नज़ारा पेश करते हैं। इसी भीड़-भाड़ में मैंने थानेदार साहब, तहसीलदार साहब और कम-उम्र बदसूरत औरत को भी खो दिया। मेरा असबाब थोड़ा सा था इसलिये चुंगीवालों से जल्द छुटकारा मिल गया और एक छोटे से क़ुली पर असबाब लाद कर मैं नदी की ओर चला। जैसा कि मैंने पहले कहा, गाटियालियां तक सफ़र अत्यन्त कष्टप्रद रहा। सर में दर्द भी पैदा हो गया था, किन्तु अब जैसे-जैसे नदी के फैले पानी से ठंडी हवा के झोंके आने लगे, तबियत साफ़ होती गई। और जब नदी के किनारे पहुँचा हूँ तो यह महसूस हो रहा था कि अभी-अभी नहाकर उठा हूँ। लम्बी-लम्बी दरियाई घास में, जो किनारे पर उगी हुई थी, एक भीनी सुगन्ध थी, जिसने बेसुध नथुनों को सचेत कर दिया। जहां तक निगाह काम करती थी, पानी ही पानी दिखाई पड़ता था; जिस पर चलते हुए बड़े-बड़े मछुए और छोटी किश्तियां मल्लाहों की कोलाहलमय रागिनियों और लम्बी लम्बी डांडों के पानी को चीरने की मद्धम आवाज़ें एक मादक दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं।

छोटे से दुबले-पतले क़ुली ने काउ के एक छोटे से पेड़ के नीचे मेरा असबाब उतार कर रक्खा। उसी पेड़ की छिदरी-छिदरी छांव में एक लड़का और लड़की बहुत सा असबाब लिये बैठे थे। शायद किश्ती का इन्तज़ार कर रहे थे। मैंने क़ुली को जेब से दुअन्नी निकालकर दी और उससे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"अब्दुल्ला"

"तो अब्दुल्ला, हमें कहीं से किश्ती का इन्तज़ाम कर दो! देखो, ज़रूर।"

अब्दुल्ला मुस्कराकर कहने लगा—"साहब, एक किश्ती तो मेरी अपनी ही है। ठहरिये, मैं अपने छोटे भाई को बुलाता हूँ। हम दोनों

आपको पार ले चलेंगे। साढ़े तीन रुपये किराया होगा!"

जब अब्दुल्ला चला गया तो मैंने ज़मीन पर बैठकर इधर-उधर देखा। रेत के बड़े-बड़े टीले, काउ और तुंग के पेड़ों के झुण्ड, उड़ते हुए माहीख़ोर। फिर मैंने अपने साथियों की तरफ़ ध्यान दिया। लड़की पीठ मोड़े नदी की ओर मुँह किये बैठी थी। वह एक गहरे रंग की हरी साड़ी पहने हुए थी, जिसका किनारा सुनहरा था। लड़का मेरी तरफ़ देख रहा था। उसने भूरे रंग का कोट और एक ख़ाकी नेकर पहिन रक्खी थी। गले में एक खुश-रंग टाई भी थी। मुझे अपनी ओर मुड़ते देखकर कहने लगा—"आप कहाँ जा रहे हैं?"

"जेहलम के पार एक गाँव है, वहाँ मेरा घर है, बस वहीं जा रहा हूँ। और आप?" मैंने सवालिया निगाहों से लड़की को देखते हुए पूछा।

लड़के ने उत्तर दिया—"हम लाहौर जा रहे हैं। मैं तो जम्मू में पढ़ रहा हूँ, पर यह.. मेरी बहन हैं। लाहौर में एफ़० ए० में पढ़ रही हैं। इन्हें पहुँचाने जा रहा हूँ। इस सफ़र में बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। अब यहाँ मल्लाह बहुत तंग करते हैं। आधे घन्टे से बैठे हैं कि कोई छोटी सी किश्ती हमारे लिये अलग मिल जाय तो उस में सवार होकर पार चले जायँ। पर यह मल्लाह लोग कहते हैं कि कोई छोटी किश्ती सिरे से है ही नहीं। सब बड़े-बड़े मछुए हैं, जिनका किराया भी बहुत माँगते हैं। आठ रुपये, दस रुपये यह तो दिन दहाड़े डाका है। सचमुच कितनी परेशानी उठानी पड़ती है।"

मैंने उसे तसल्ली देते हुए कहा—"आप घबराइये नहीं, अभी किश्ती मिल जायगी। मैं सब इन्तज़ाम किये देता हूँ। और हम सब आराम से जेहलम पार पहुँच जायँगे।"

लड़की ने मेरी तरफ़ देखा। अगर मैं यह कह दूँ कि उस जैसा सुन्दर और भोला-भाला चेहरा मैंने आज तक नहीं देखा तो यह

वास्तव में एक झूठ होगा। लेकिन यह कह देने में मुझे ज़रा भी संकोच नहीं कि उसके चेहरे में कुछ ऐसा विचित्र आकर्षण और मोहिनी थी जिसने मुझे एकदम मुग्ध कर लिया। केवल एक क्षण के लिये उस ने मेरी ओर देखा और फिर उसकी घनी-घनी पलकें उसके गालों पर झुक गईं। वह काश्मीर की अलौकिक सुन्दरता का एक अद्भुत नमूना थी। आकर्षक नख-शिख, सुडौल शरीर, मनोहर रंग। किन्तु जिस चीज़ ने मुझे अधिक प्रभावित किया वह उसकी ज़ाहिरी ख़ूबसूरती से बढ़कर उसकी निगाहों की निराशा और उदासी थी, जिसे मैं एक झलक में ही पा गया। ओफ़! वे उदासी की गहराइयाँ! उस एक क्षण में मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो मैं बिजली की सी तीव्रता के साथ किसी गहरे समुद्र में डूबा जा रहा हूँ। फिर एकाएक मुझे ठोकर सी लगी और मैंने अपने आपको किनारे पर पाया। कितना विचित्र अनुभव था। किन्तु यह अनुभव केवल एक क्षण तक ही रहा। दूसरे क्षण वह जेहलम के फैले हुए पानी की ओर जिज्ञासु दृष्टि से देख रही थी। अब उसका चेहरा स्पष्ट और भोला-भाला था। हर प्रकार की भावनाओं से खाली। मेरे हृदय में एक विचित्र व्याकुलता उत्पन्न हो गई।

इतने में और दो मुसाफ़िर पेड़ के नीचे आकर बैठ गये। पहले एक बूढ़ा आदमी, श्वेत बालों वाला, लाठी टेकता हुआ आया और 'राम-राम' करता हुआ मेरे निकट बैठ गया। फिर बच्चा उठाये हुए वही कम-उम्र की बदसूरत औरत दिखाई पड़ी। उसके साथ एक कुली ट्रंक और गठरी उठाये हुए था। वह औरत भी लड़की के पास जाकर बैठ गई और छोटा बच्चा हरी साड़ी के पल्लू को खेंचने लगा।

थोड़ी देर के बाद अब्दुल्ला भी आ गया और कुछ मिनटों के बाद उसका भाई एक किश्ती किनारे पर ले आया। अब्दुल्ला ने मुझसे मुस्कराकर कहा—"चलिये किश्ती में बैठिये।"

बूढ़ा आदमी उसको सम्बोधित कर बोला—"मुझे भी ले चलो

बाबा, राम तुम्हारा भला करे।"

बदसूरत औरत भी उठ खड़ी हुई। कहने लगी—अगर आप बुरा न मानें तो मैं भी इस किश्ती में बैठ जाऊँ। मुझे आज गुजरानवाला पहुँचना है। और अगर यह गाड़ी न मिली तो फिर...अब शाम भी होती जा रही है और मैं अकेली हूँ।"

हम सब किश्ती में जाकर बैठ गये। कुलियों ने माल-असबाब किश्ती में क़रीने से रख दिया।

अब्दुल्ला और उसके भाई ने आस्तीनें ऊपर चढ़ा लीं और एक-एक डाँड हाथ में लेकर किश्ती के दोनों सिरों पर खड़े हो गये।

अल्लाह का नाम लेकर किश्ती चली। अब्दुल्ला ने गाना शुरू किया—

जिस दा नाँ लैंदियाँ बेड़ा पार वे
डाची वालिया मोड़ महार वे

अब्दुल्ला ने रुककर पूछा—"आप को मेरे गाने पर कोई एतराज़ तो नहीं।"

लड़की ने जल्दी से कहा—"नहीं नहीं, ज़रूर गाओ, तुम्हारी आवाज़ बहुत अच्छी है!"

अब्दुल्ला ने फिर गाना शुरू किया। वही 'डाची' का पुराना गीत, जिस गाने के लिये सोज़ चाहिये साज़ नहीं।

एक साँडनी-सवार को सहरा में से गुज़रते देखकर एक उदास सुंदरी, जो अपने प्रेमी की तलाश में परेशान है, उसे रुक जाने को कहती है और फिर उससे प्रार्थना करती है कि तू मुझे साँडनी पर बैठा कर मेरे बिछुड़े हुए प्रेमी से मिला दे।

डाची वालियाँ! मोड़ें महार वे
डाची वालियाँ! ले चल नाल वे

लड़के ने धीरे से कहा—"ज़ालिम बहुत अच्छा गाता है, क्या सुरीला गला है! मुझे गाने का बहुत शौक़ है, ज़रा सुनो तो..... "

मैंने लड़की की तरफ़ देखा। वह अपने भाई के कन्धों से सर लगाये एक तरफ़ बैठी थी। धीरे से उसने आँखें बन्द कर लीं। उसके होठों पर एक अजीब निराशापूर्ण मुस्कराहट आ गई। बहुत धीरे से उसने अपने बाज़ू छाती पर बाँध लिये और टाँगें फैलाकर सीट पर लेट गई—इस तरह कि मैं उसके आधे चेहरे को देख सकता था, उसके खूबसूरत हाथों को, उसके नाज़ुक टखनों को।

मेरी डाची दे गल विच टल्लियाँ
मैं ताँ माही नूँ मनावन चल्लियाँ

अब्दुल्ला की सोज़ भरी आवाज़ ने मेरी भावनाओं की सिमटी हुई दुनिया में हलचल पैदा कर दी। मेरा दिल एक अजीब दर्द की लज्ज़त के मजे लेने लगा। यह कैसी टीस थी, हलकी, मीठी— ऐसा मालूम होता था कि गीत की हर लय में किसी विरह की मारी सुन्दरी की रूह खिंची चली आ रही है, या जेहलम नदी का फैला हुआ पानी एक सहरा है जिसमें हमारी किश्ती, 'डाची' बनी हुई प्रेमी की तलाश में जा रही है—रूठे हुए प्रेमी को मनाने के लिये।

डाची........ मै ताँ माही नू मनावन चल्लियाँ।

लड़की ने चुपके से साड़ी के आंचल से अपने आँसू पोंछे। उसके भाई ने नहीं देखा लेकिन मैंने देख लिया। क्या डाची के सुन्दर गीत ने लड़की के दिल में प्रेम की दबी हुई आग को भड़का दिया था? नहीं तो ये आँसू कैसे? मेरा दिल इस भेद को जानने के लिये बेताब हो गया। वह किस बिछुड़े हुये प्रेमी की याद में रो रही थी? मैंने चाहा कि मैं गुलाब की नर्म नाजुक पंखुड़ियों से उसके आँसू पोंछ डालूँ और उससे पूछूँ—"बता हे सुन्दरी! तुझे क्या ग़म है?"

इसके बजाय मैंने उस बदसूरत औरत की निगाहें अपने चेहरे पर जमी हुई देखीं। मुझे देखकर उसने लजाकर अपनी आँखें नीची कर लीं और अपने बच्चे पर झुक गई।

छलक.... छलक..... छलक .... छलक।

किश्ती भागी जा रही थी, डाँडें बारी-बारी हिल रही थीं पश्चिम में सूरज डूब रहा था, नदी में डूब रहा था। नदी की ख़ामोश सतह पर एक अजीब, नाज़ुक, निराली जादूभरी रोशनी फैल गई थी। मैंने समझा यह सूर्यास्त नहीं, प्रभात का प्रारंभ है, पश्चिम नहीं पूर्व है, प्रकाश का महास्रोत है, हम अमर इन्सान हैं जो इस कभी न डूबने वाली किश्ती पर सवार होकर अपने प्रेमी से मिलने जा रहे हैं, अपने अमर प्रेमी से।

मैं ताँ माही नूँ मनावन चलियाँ

चप......चप......शप......शप......

किश्ती भागी जा रही थी।

शाम हो गई। अँधेरा बढ़ता गया, अब्दुल्ला खामोश हो गया। फिर एक मनोहर ढंग से सफ़ेद, दूध जैसी बेदाग़ चाँदनी खिल गई और मुझे डल में तैरते हुए कँवल के फूल याद आ गये। किश्ती के चारों तरफ़ दूर-दूर तक पानी की हलकी टूटती हुई लहरों पर ऐसा मालूम होता था कि कँवल के लाखों फूल खिल गये हैं।

बूढ़ा धीरे-धीरे 'राम-राम' जप रहा था। बदसूरत औरत चोर निगाहों से कभी मुझे, कभी खामोश लेटी हुई लड़की को देख लेती थी। लड़के ने एक दो बार अपनी बहन की तरफ देखा और फिर मुझको सम्बोधित कर कहा—"बेचारी श्यामा, सफ़र की थकान से चूर होकर आखिर सो गई है। कितना परेशानी भरा सफ़र है।"

क्या वह सचमुच सो रही थी या आँखें बन्द किये कुछ सोच रही थी। वह बिलकुल बेसुध, अचेत, एक संगमरमरी मूर्ति के समान पड़ी थी, या शायद वह किसी सपने की ठण्डी छाँव में सितारों की कँप-कँपाती हुई असीम, अनन्त दुनिया में अपने प्रेमी से मिल रही थी, या फिर उसकी स्वच्छन्द आत्मा चांद की किरणों में भटकी हुई किसी को तलाश कर रही थी। हाँ, मगर किसको ?

आखिर एक लम्बे समय के बाद इस लम्बी खामोशी को अब्दुल्ला ने तोड़ दिया—"लो वह किनारा आ गया।" उसने डांड को ज़ोर-ज़ोर से हिलाते हुए कहा।

किनारे पर पहुँचकर मैंने लड़के से कहा—"आप जाकर टांगा ठीक करें, मैं यहां कुलियों का इन्तज़ाम करता हूँ।"

टाँगे वालों का अड्डा कोई फर्लाङ्ग भर दूर था। लड़का टाँगे का इन्तज़ाम करने गया। मैंने अब्दुल्ला से कहा—"ज़रा कहीं से कुलियों को तो बुला दो।"

अब्दुल्ला कहने लगा—"अब इस वक्त यहां नदी के किनारे क़ुली कहां से आयँगे?"

"तो फिर अब क्या किया जाय?"

"मेरी समझ में तो यही आता है कि हम दोनों भाई दो तीन फेरे लगाकर आपका असबाब टाँगों पर रख दें। चार आने फ़ी फेरा लेंगे।"

"अच्छा योंही सही। उठाओ असबाब और इन (बदसूरत औरत की तरफ इशारा करके) को भी अड्डे पर ले चलो।"

अब्दुल्ला के आख़िरी फेरे पर मैंने किश्ती में सोई हुई लड़की को जगा दिया—"उठिये, अब तो जेहलम का दूसरा किनारा भी आ गया।"

मेरी ज़बान से पहला शब्द सुनकर ही वह उठ खड़ी हुई। वह अवश्य ही सो नहीं रही थी। चाँदनी रात में उसका रंग केशर के फूल की तरह पीला पड़ गया था, और होंठों पर वही निराशा भरी मुस्कराहट थी।

मैंने बटुए से एक रुपया निकालकर कहा—"एक रुपये की रेज़गारी होगी?"

उसने हैंड-बैग खोलकर पैसे निकाले और मुझे दे दिये। वह नर्म व नाज़ुक उंगलियाँ बर्फ की तरह ठंडी थीं।

मैंने अब्दुल्ला को इनाम दिया। उसने झुककर हमको सलाम किया और फिर हमारी तरफ पीठ मोड़कर किश्ती में बैठ गया।

हम खामोश चले जा रहे थे। हमारे आगे बूढ़ा लाठी टेकता जा रहा था। चन्द क़दम चलकर मैंने श्यामा से हिम्मत करके पूछा—"आप किश्ती में रो रही थीं, क्यों ?"

वह खामोश चलती गई, सर झुकाये हुए।

मैंने फिर कहा—"विश्वास कीजिए मैंने सच्चे दिल से सवाल किया है, मैं दिल से चाहता हूँ कि आप अपना दुःख मुझसे कह सकें और मैं आपके किसी काम आ सकूँ। इसमें कोई हर्ज है ?"

उसने भीगी आँखों से मेरी तरफ़ देखा। वह कुछ कहना चाहती थी कि एकाएक कुछ सुनकर वह एक हलकी सी चीख मार कर ठिठक गई। वह गिरने को थी कि मैंने उसे एक बाजू से थाम कर सहारा दिया। अब्दुल्ला चाँद की तरफ मुँह किये हुए गा रहा था—

साडी डाची दे गल विच ढोलना
झूठे सजनाँ दे नाल की बोलना
डाची वालियाँ मोड़ .....

आवाज़, ऐसा मालूम होता था कि दूर परे जेहलम के फैले हुए पानी पर चाँद की जादू बरसाती किरनों पर कांपती हुई आ रही है। वर्णन-शैली में बला की शोखी थी और शब्दों में एक असीम व्यंग, जो दिल को छेदे डालता था। मैंने लड़की की तरफ़ देखा। वह कांप रही थी और जल्द क़दम उठाने की कोशिश कर रही थी। शायद वह उस करुण गीत के शक्तिशाली तूफ़ान से भागना चाहती थी, वह तूफ़ान जो उसकी व्याकुल आत्मा के पीछे भाग रहा था।

शेष रास्ता हमने चुपचाप तय किया।

जब मैं उन्हें टाँगों पर सवार कर चुका तो लड़के ने हाथ मिलाते हुए कहा—"धन्यवाद, बहुत बहुत धन्यवाद, हमने आपको बहुत कष्ट दिया . क्या आपका गाँव यहाँ से नज़दीक है . ?"

"बस कोई तीन चार मील होगा, वह सीधी पगडंडी जा रही है... पैदल ही जाना होगा . ।"

बदसूरत औरत ने मेरी तरफ़ देखकर हाथ जोड़े और फिर सिर झुका लिया।

मैंने हाथ जोड़कर सर झुकाया। दो बार, एक बार बदसूरत औरत को देखकर और दूसरी बार लड़की को देखकर। लड़की ने मेरी तरफ़ अस्पष्ट, खुमार-भरी, उदास निगाहों से देखा। वे निगाहें शायद खुलकर दिल का राज़ कह देना चाहती थीं, पर कामयाब न हो सकीं। उन आँखों में एक हल्की-सी चमक पैदा भी हुई लेकिन फिर तुरन्त ही गुम हो गई। जैसे कोई सुन्दर कंकड़ समुद्र के गहरे नीले पानी में खो जाय। उसका दायाँ बाजू थोड़ा सा ऊपर उठा फिर नीचे गिर गया। चूड़ियों की झंकार पैदा भी हुई और फिर एक क्षण में कांपती हुई कहीं विलीन हो गई—जैसे आसमान से कोई तारा टूटे और वायुमंडल में घुल जाय। ......अब वह नज़र नीची किये साड़ी का पल्लू ठीक कर रही थी।

"गुड बाई" मैंने जल्दी से कहा। टाँगा चलने लगा। लड़के ने ज़ोर से हाथ हिलाते हुए कहा—"गुड बाई।"

सीधी, खेतों के बीचों बीच पगडंडी जा रही थी। आकाश पर सितारों के बीच भी इसी तरह एक पगडंडी बनी हुई थी .... यह सफ़र कब शुरू हुआ? —मैं सोचने लगा—ये दोनों पगडंडियाँ किधर जा रही हैं? ......क्या यह सफ़र कभी खत्म होगा?

—:o:—

: २ :

हुस्न और हैवान

प्रभात की उड़ती, घुलती हुई स्याही और सफ़ेदी में वह एक छोटे से नाले के समीप पहुँच गया और अपने कपड़े उतारकर नंगधड़ंग नाले में घुस गया। पानी एक-दो जगह इतना गहरा था कि कमर तक आता था। पाँव कहीं कोमल, मुलायम रेत और नीले नीले पत्थरों पर फिसलते मालूम होते थे। शीघ्र चंचल मछलियाँ अपने रुपहले धड़ों को हिलाती हुई इधर-उधर घूम रही थीं। कई पत्थरों पर ऊदी, हरी या स्याह काई जमी हुई थी, और जब नहाते-नहाते सहसा उसके पाँव उन पत्थरों से जा लगते तो उसके शरीर के रोएँ-रोएँ में एक विशेष प्रकार के ऐन्द्रिक आनन्द का ज्ञान जाग उठता, और प्रसन्न होकर वह मुँह में पानी भरकर ज़ोर-ज़ोर से ग़लु-ग़लु-ग़लु करने लगता और कुल्लियों के छोटे-छोटे फ़व्वारे छोड़ता और हँसता, गाता, पानी में नाचता और दोनों हाथों से छींटे उड़ाता — जैसे उसके सम्मुख उसका गहरा दोस्त खड़ा हो।

लेकिन नाले में उस समय उसके सिवा और कोई नहीं था। केवल चट्टान के किनारे एक लाल रंग का केकड़ा अपनी चीनी आँखों से उसकी दिलचस्प हरकतें देख रहा था और उसकी विचित्रता से आनन्दित हो रहा था। नाले के तीनों तरफ़ ऊँची-ऊँची घाटियाँ थीं। चौथी तरफ़ नाला बहता हुआ जेहलम नदी से मिल

जाता था। जेहलम के पार मरी की पर्वत-राशि फैली हुई थी और उनके सीने को चीरती हुई मोटर की सड़क एक बड़े अजगर की सफ़ेद केंचली की तरह बल खाती हुई दिखाई देती थी। नीरवता, पूर्ण सन्नाटा, न मोटर की घौं-घौं न चीड़ के वृक्षों की सायँ-सायँ, न गिटारियों की करायँ-करायँ। नाले का पानी तक सोया हुआ मालूम होता था और कहीं-कहीं चट्टानों के समीप पानी के गुज़रने से तिरिल-रिल तिरिल-रिल की आवाज़ पैदा होती थी। लेकिन यह आवाज़ इतनी मद्धम-सी मालूम होती थी कि सन्नाटे से सध्वनित जान पड़ती थी। वह आँखें बन्द करके पानी में ग़ोता लगाता और ग़ोता लगाते ही पानी में आँखें खोल देता। और कुछ क्षणों के लिये इस अन्तर-जल के सुन्दर संसार का तमाशा देखता और फिर जब उसकी साँस घुटने लगती तो वह अपना सिर पानी की सतह के ऊपर उठा लेता और उस तिरिल रिल तिरिल रिल की मद्धम मीठी आवाज़ को सुनता जो या तो सृष्टि की नीरवता की प्रतिध्वनि थी या उसकी तेज़-तेज़ साँस की लय या प्रभात के सूक्ष्म चुम्बनों का स्पर्श।

नहाते-नहाते जब उसे अपने बदन के प्रत्येक रोम में बर्फ़ की सुइयाँ-सी चुभती महसूस हुईं और जब नाले के स्रोत पर उड़ते हुए बादलों के किनारे सूरज के उबलते हुए सोते-से दमकने लगे तो उसे अपने दिन भर के सफ़र का विचार आया। बीस मील का लम्बा सफ़र और उसे कल सुबह धलीर के मिडिल स्कूल में हेडमास्टर का चार्ज लेना था। पथ अज्ञात था और कठिन भी। आशा थी कि रास्ता पूछ-पूछ कर वह लक्ष्य पर जा पहुँचेगा। कुछ देर के मानसिक असमंजस के बाद वह नाले से बाहर निकला, झोले से तौलिया निकालकर बदन पोंछा, फिर नाश्ता निकाला और एक ऊँची चट्टान पर बैठकर खाने लगा। रोटी के कणों ने जो बार-बार पानी में गिरते थे मछलियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और वह चट्टान के गिर्द इस तरह जमा हो गईं जिस तरह चुम्बक के गिर्द लौहचूर्ण के कण

इकट्ठे हो जाते हैं। रोटी, उसने सोचा, दुनिया में सब से बड़ा चुम्बक है और अब तो वह लाल रंग का केकड़ा भी अपने अनगिनत हाथ हिलाता हुआ, पानी में तैरता हुआ, उन कणों की ओर आ रहा था। बीस मील का सफ़र था लेकिन इस सफ़र के आखिर में भी एक रोटी का टुकड़ा ही लगा हुआ था जिसकी तरफ़ वह खिंचा जा रहा था। अचानक उसे महसूस हुआ कि वे बीस मील बंसी के एक लम्बे तार की तरह थे जिसके सिरे पर एक हुक में एक रोटी का टुकड़ा लगा हुआ था। नाश्ता खाते-खाते उसने अपने आप को उस बेबस मछली की तरह जाना कि जिसके गले में बंसी का काँटा अटक गया हो। वह खाँसने लगा और उसकी आँखों में आँसू भर आये। फिर वह मुस्कराने लगा, अपनी कल्पना की छलाँग पर। नाले के स्रोत पर बादलों का रंग गुलाबी हो गया था और उनके पीछे तरल सोना उबलता हुआ मालूम होता था। थोड़ी देर में यह उबलता हुआ तरल सोना बादलों को फाड़कर बह निकलेगा और दिन चढ़ जायगा। उसे अब चलना चाहिये।

जब वह चला तो केकड़े ने एक मछली को पकड़ लिया और अब वह अपनी चीनी आँखों से अपने शिकार की ओर उल्लासपूर्ण निगाहों से देख रहा था।

पहले पाँच मील की चढ़ाई कठिन थी। पगडण्डी बल खाती हुई ऊपर ही ऊपर चढ़ती चली जा रही थी जैसे आकाश को छूकर ही दम लेगी। बेवक़ूफ़ पगडण्डी, भला आकाश को कौन छू सकता है? उसे पगडण्डी की इस अशिष्ट हरकत पर बहुत क्रोध आया। अगर वह आराम से मज़े-मज़े में चलती चली जाती तो न मुसाफ़िरों को थकान महसूस होती न उसकी साँस की धौंकनी तेज़ होती, न उसका शरीर पसीने में शराबोर होता। लेकिन अब यह सब कुछ था, और पगडण्डी थी कि बराबर ऊँची होती चली जा रही थी जैसे वह आकाश को छू लेगी। पगडण्डी की यह अभिलाषा एक अपूर्ण आकांक्षा की-सी

थी क्योंकि वास्तव में आकाश कहीं भी नहीं है, इसकी वास्तविकता एक भ्रम की भाँति है। जो चीज़ न हो उसे कोई क्योंकर पा सकता है। लेकिन पगडण्डी . ख़ैर, मुझे अब सुस्ता लेना चाहिये। उसने सोचा मुझे इस पगडण्डी पर बीस मील चलना है। पगडण्डी के पाप पगडण्डी के मुसाफ़िरों को भी अपनी लपेट में ले लेते हैं; बाइबिल में साफ़ लिखा है। यही अच्छा है कि इस फगवाड़े के वृक्ष के नीचे थोड़ी देर विश्राम कर लिया जाय।

वह पहाड़ी अंजीर के वृक्ष के नीचे सहारा लगाकर बैठ गया। इस वृक्ष के सामने अंजीर का एक और वृक्ष था। नीचे एक तलहटी थी जहाँ दो छोटे-छोटे खेतों में मकई के पौदे उगे हुए थे। उनके परे बंज की बाढ़ थी और उससे परे वह नीला आकाश और मरी की पर्वत-श्रृङ्खला और उनके वृक्षों को चीरती हुई मोटर की सड़क। उसने इस दृश्य की ओर देखते-देखते यह महसूस किया कि यह सारा दृश्य नक़ली है। आकाश की नीली सतह पर किसी अज्ञय चित्रकार ने कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच दी थीं। इसमें जान बिलकुल न थी, न रूप, न लावण्य। फिर कहीं से एक लारी चींटी की तरह रेंगती हुई मोटर की सड़क पर चलती नज़र आई। आकाश पर चील अपने पर तोलती हुई नज़र आई। बंज की बाड़ से एक पुरुष और स्त्री बाहर निकले और मकई के पौदों में घुस गये। सामने अंजीर के वृक्ष पर दो चिड़ियाँ नज़र आईं और फुदक-फुदक कर एक दूसरे से चोंच मिलाने लगीं। अब हर तरफ़ हरकत थी। निश्चल तस्वीरों में प्रकम्पन पैदा हो गया था। नीरवता में संगीत उत्पन्न हो गया था और आकाश की नीली सतह पर समुद्र की-सी गहराई। उसने सोचा द्रव्य से गति और गति से कल्पना पैदा होती है। इस पगडण्डी को कल्पना की ओर देखो। इसकी हिम्मत, इसका साहस, इसके प्रयत्न की सराहना न करना अन्याय होगा। और एक मैं हूँ कि आध घण्टे से यहीं सुस्ताने बैठा हूँ। और अभी तक वह स्त्री और पुरुष खेतों से बाहर क्यों नहीं निकले? शायद खेतों की नलाई

कर रहे हैं। चिड़ियों ने हँस-हँसकर कहा, चूँ चूँ चूँ, यानी हम ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं, जाओ अपनी राह लो और हमारी खुशियों में ख़लल न डालो। वह घुटनों का सहारा लेकर उठा और आगे चल पड़ा।

पगडण्डी का रंग ज़र्द था, किनारों पर हरी घास झुकी हुई थी। कहीं-कहीं जंगली फूल खिले हुए थे। लेकिन मुर्झाये-से जैसे सफ़र की थकान से चूर हो गये हों। जैसे उन्हें प्यास लगी हो और उन्हें कोई पानी देने वाला न हो। वह आगे बढ़ता गया और उसकी प्यास चमक उठी। पगडण्डी अब तक ऊँचे खेत की मेंड़ के नीचे से गुज़र रही थी। उसने सिर उठाकर देखा तो एक कोमल-शरीर बकरी खेत की मेंड़ पर चरती नज़र आई। उसने अपने होंठों पर ज़बान फेरी और बकरी ने सिर उठाकर एक उचटती नज़र से उसकी तरफ़ देखा और फिर, ऊँ-ऊँ में-में, करके मुँह फेर लिया, जैसे कह रही हो, मियाँ आगे बढ़ो, यहाँ कोई पानी-वानी नहीं, और मेरे थनों में जो दूध है वह मेरे मालिक के लिये है।

उसने टोपी उठाकर कहा—'बहुत अच्छा मादाम, तुम्हारा शरीर तुम्हारे पति के लिये है। तुम्हारा दूध तुम्हारे मालिक के लिये है। तुम्हारी आत्मा हिन्दुस्तानी औरत की तरह है! इस देश में प्यासे मुसाफ़िरों के लिये कोई ठिकाना नहीं। सफ़र को इसीलिये यहाँ एक झंझट समझा जाता है, खुशी नहीं, और काले पानी पार जाना तो एक पाप है। बहुत अच्छा मादाम, यूँ ही सही, क्षमा चाहता हूँ।"

प्यास से हलक़ में काँटे-से चुभने लगे। और यह पगडण्डी अभी ऊपर ही जा रही थी। रास्ते में उसे एक किसान मिला। उससे पूछा—"भई, यहाँ कोई पानी का चश्मा है?"

"है तो सही, लेकिन यहाँ से कोई तीन मील ऊपर चढ़कर—"

"बहुत प्यास लगी है भाई, कोई चश्मा निकट हो तो बता दो, बड़ा उपकार होगा।"

किसान ज़मीन पर बैठ गया। उसने अपनी लाठी से बँधी गठरी

को खोला और उसमें से एक केशरी रंग की मोटी-सी तरेड़ी निकाली, खूब रसदार थी और ताज़ी। उसने उसे पत्थर पर तोड़कर उसके दो टुकड़े कर दिये। आधी तरेड़ी देकर कहा--"पहले तो इसका रस पी जाओ, फिर रास्ते में इसकी फाँकें बनाकर खाते जाना, भगवान् ने चाहा तो तीन मील तक अब प्यास न लगेगी।"

खट्टा-सा स्वादिष्ट रस था जैसे गोलगप्पे बेचने वाले के यहाँ होता है। बीजों समेत उसके हलक़ में उतरता चला गया। और उसकी आँखों की चमक फिर लौट आई। तरेड़ी का एक क़तला सा उतारकर खाते हुए उसने किसान को धन्यवाद कहा। किसान ने आत्मीयता से पूछा—"कहाँ जा रहे हो?"

"मौज़ा धरेला।"

"ठीक यही रास्ता है।"

"और तुम कहाँ जा रहे हो?"

"मैं कोहाले जा रहा हूँ, सुना है वहाँ मोटर सड़क पर बोझ उठाने वालों की ज़रूरत है, अबकी फ़सल कुछ अच्छी नहीं हुई..... ।"

लगान, रिश्वत, नम्बरदार, बच्चे, बीवी। किसान गठरी काँधे पर रखकर नीचे की तरफ़ उतर गया। यह मक़नातीस (चुम्बक) की दूसरी सिम्त थी, या वही बंसी का काँटा जो मुक्ति पाने तक ज़िन्दगी के गले में अटका रहता है? प्यास बुझ चुकी थी और वह तरेड़ी के क़तले खा रहा था। एक सर्व के वृक्ष के नीचे एक बूढ़ा किसान और एक नन्ही-सी लड़की नज़र आई--किसान हँसकर मुर्ग़े की बोली बोल रहा था, "कुकड़ूकूँ --कुकड़ूकूँ ।"

नन्ही लड़की हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई—"अब्बा कुकड़ूकूँ, कुकड़ूकूँ ।"

मुसाफिर को तरेड़ी खाते देखकर वह मचल उठी—"अब्बाजी, मैं भी तरेड़ी खाऊँगी, मैं भी तरेड़ी खाऊँगी।"

मुसाफ़िर मुड़ा और सर्व के वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया।

"सलाम, ओ राही।" बूढ़े ने कहा।

"सलाम बाबा।"

"मैं तरेड़ी खाऊँगी अब्बाजी!"

मुसाफ़िर ने तरेड़ी का एक क़तला लड़की के हाथ में दे दिया। लड़की के गुलाब-से कपोल अरुणिम हो गये। उसने उसे अपनी गोद में ले लिया। वह बड़े मज़े से उसकी गोद में बैठकर तरेड़ी खाने लगी।

"कितनी प्यारी लड़की है! यह तुम्हारी लड़की है न, क्या नाम है इसका?"

'जरी (यानी नन्ही)। जी, यह मेरे बेटे की लड़की है लेकिन यह मुझे अब्बा कहकर पुकारती है, क्योंकि मेरा बेटा लाम पर गया हुआ है, यह उस समय चार महीने की थी।'

लाम, युद्ध, यह सुन्दर गोल चेहरा, गुलाबी गाल, चमकती हुई निष्कपट आँखें, मशीनगनों की तड़ातड़, चीख़ते हुए बम और तारों पर उलझी हुई आँतें। उसने सोचा कि कुछ प्यासें ऐसी होती हैं कि उन्हें बुझाने के लिये मनुष्य मनुष्य को क़तल कर डालते हैं, बिलकुल इसी तरेड़ी की तरह, लेकिन तरेड़ी तो एक निश्चल चीज़ है और मनुष्य एक चंचल विकल शोला।

द्रव्य से गति पैदा होती है और गति से कल्पना। लेकिन इस मनुष्य की कल्पना देखो और फिर इस पगडण्डी की कल्पना......चुम्बक की दो विपरीत सिम्तें।

बूढ़े ने चिल्लाकर कहा—"कुकड़ूकूँ।"

तीन मील ऊपर चढ़कर वह एक चश्मे के किनारे पहुँच गया। वृक्षों के झुण्ड में बहुत से राही बैठे हुए थे। चश्मे के मुँह पर लकड़ी का नल लगा हुआ था जिसमें से पानी एक मोटी धार की तरह नीचे गिरता था। उसने अपनी ओक इस मोटी धार के नीचे रख दी और पानी पीने लगा। पानी उसके हलक़ के नीचे उतर रहा था, उसकी आँखों में जा रहा था। उसके बालों में, उसके गालों पर बह रहा था।

पाँव धोकर और ताज़ादम होकर वह वृक्षों के झुण्ड की तरफ़ चला गया। यहाँ बहुत से लोग बैठे हुए थे, कई एक खाना तैयार कर रहे थे। कुछ लोग बनिये की दूकान से जो वृक्षों के झुण्ड के क़रीब ही थी आटा और गुड़ ख़रीद रहे थे। एक घास के प्लाट पर चन्द एक ख़च्चरें चर रही थीं और उनका मालिक उन्हें दाने के लिये क़रीब बुला रहा था। एक राही मकई की रोटी गुड़ के साथ खा रहा था और तीन ग्रासों के बाद पानी के दो घूंट पी लेता था। मकई की रोटी क़रीब-क़रीब हर एक के पास थी, किसी के पास पिसा हुआ नमक-मिर्च था तो किसी के पास प्याज़। हाँ, सालन किसी के पास न था, न अचार, न मुरब्बे, न मक्खन। ये लोग ख़च्चरों की तरह अत्यन्त तन्मयता से अपने जबड़े हिलाने में व्यस्त थे। मकई की रोटी, उसे मालूम था, इतनी खुश्क होती है कि मुँह का गीलापन उसे हलक़ से नीचे उतारने के लिये काफ़ी नहीं होता। इसीलिये तो बार-बार पानी पिया जाता है। जब सालन मौजूद न हो तो पानी ही श्रेष्ठ सालन होता है। एक हज़ार साल की व्यवहारिक और आर्थिक प्रगति के बाद भी मानव-सभ्यता इससे ज़्यादा कुछ न कर सकी कि मनुष्यों की अधिकतर आबादी को खुश्क रोटी और पानी मुहैया कर सके, खुश्क रोटी और पानी; और ख़च्चरों की तरह चलते हुए जबड़े और ज्योतिहीन आँखें। उसने चुपड़ी हुई गेहूँ की लचकीली रोटी पर मुरब्बा लगाते हुए सोचा कि वह आज इन वृक्षों के झुण्ड के नीचे बैठे हुए किसानों में मुरब्बा और मक्खन और अचार बाँट कर हज़ारों साल की परम्परा को तोड़ देगा। फिर उसने सोचा कि उसे अभी पन्द्रह मील और सफ़र करना है और वैसे भी हज़ारों साल की भूख मुरब्बे के एक छोटे टुकड़े से नहीं मिटाई जा सकती।

जब वह अपना थैला बन्द करके चलने को था तो उसकी निगाह आदमियों की एक टोली की तरफ़ गई जो ऊपर पगडण्डी से चश्मे की ओर आ रही थी। दो आदमी जिनके सरों पर लाल व पीली पगड़ियाँ

थी और जिन्होंने खाकी रंग के वस्त्र पहन रखे थे और जिनके कन्धों पर पीतल के चमकते हुए बिल्ले लगे हुए थे। वे एक युवक किसान को अपने बीच में पकड़े हुए ला रहे थे। कुछ समय बाद उसने देखा कि इस युवक के हाथ पीठ पर हथकड़ियों से बँधे हुए थे। उनके पीछे-पीछे एक और आदमी आ रहा था और वह अपने साथ एक लड़की को लिये चला आ रहा था और उससे मुस्करा-मुस्कराकर बातें कर रहा था। लड़की की निगाहें नीची थीं और क़दम लड़खड़ाये हुए।

जब वह वृक्षों के झुण्ड के नीचे पहुँचे तो सारे किसान राही उनके सम्मान के लिये खड़े हो गये। बनिया भी अपनी दुकान से बाहर निकल आया और हाथ जोड़कर उनके सामने जा खड़ा हुआ। फिर उनके लिये दो चारपाइयाँ दुकान से बाहर निकाल लाया और उन पर उजली चादरें बिछाकर उन्हें बैठने के लिये कहने लगा। उनकी गर्वपूर्ण शान और इनकी त्रस्त नम्रता कहे देती थी कि यह नये लोग ऐसी रहस्यपूर्ण शक्ति के मालिक हैं जो इन दूसरे मनुष्यों को हासिल नहीं! एक आदमी जो इन सबका सरदार मालूम होता था उसने लड़की को परे एक वृक्ष के नीचे बैठने को कहा। और फिर उसने उन दो आदमियों को सम्बोधन किया जो उस युवक को पकड़े हुए थे—

"ओ दुल्ले, शहबाज़, इस हरामी की हथकड़ी ज़रा ढीली कर दो और इसे पानी वग़ैरा पिलाओ।"

बनिया बोला—"हुज़ूर जल लाऊँ, ठंडा मीठा शरबत, कोहाले से नई नई मिश्री मँगवाई है।"

दुल्ला और शहबाज़ किसान को हथकड़ियों से जकड़े हुए चश्मे की ओर ले जा रहे थे, जहाँ पहले ही एक खच्चर वाला अपने खच्चर को पानी पिला रहा था।

हुज़ूर ने उत्तर दिया—"हाँ, हाँ, शाहजी, शर्बत पिलाइये, बहुत प्यास लगी है; और हम खाना भी यहीं खायेंगे। कोई मुर्ग़ी वग़ैरह है?"

"जी हुज़ूर, अभी सब इन्तज़ाम हुआ जाता है।" बनिये ने हाथ जोड़ते हुए, बत्तीसी निकालते हुए, सिर हिलाते हुए कहा।

ख़च्चर वाला ख़च्चरों को पानी पिलाकर उन पर सामान लादने लगा। दुल्ला और शहबाज़ किसान को पानी पिलाकर वापस ले आये और उसे अपने सरदार के सामने बिठा दिया।

हुज़ूर ने किसान से कहा—"कान पकड़ो।"

"मैं कहता हूँ हरामज़ादे, कान पकड़ो।"

किसान ने अपनी बाहें टाँगों के बीच से गुज़ारकर कान पकड़े। दुल्ले ने पत्थर की एक भारी सिल उसकी पीठ पर रख दी। कान पकड़ने वाले जानवर के मुँह से हाय निकली। लड़की के होंठ कॉंप रहे थे, हुज़ूर शर्बत पी रहे थे। एक दो घूँट पीकर कहने लगे—"शहबाज़, इसकी पीठ पर एक और सिल रख दो।"

लड़की की आँखों से आँसू बह निकले, उसने अपना मुँह लाख सूसी के दुपट्टे में छिपा लिया।

ऐसा मालूम होता था जैसे किसान की कमर दोहरी होकर टूट जायगी। हुज़ूर ने पूछा—"बोल अब भी स्वीकार करता है कि तू इस नाबालिग़ लड़की को भगाकर लाया है, या नहीं?"

"नहीं" किसान ने रुक-रुककर कहा—"यह नाबालिग़ नहीं है, यह अपनी मर्ज़ी से आई है।"

"मजनू के साले, अब भी बराबर इन्कार किये जाता है। शहबाज़, इसकी कमर पर एक और पत्थर रख दो।"

ख़च्चर घबराई हुई निगाहों से इस दृश्य को देख रही थी। राहियों के रंग उड़ गये थे। यह सब किसी रहस्यपूर्ण शक्ति से भयभीत मालूम होते थे। लड़की ने चीख़कर कहा—"इसे छोड़ दो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, इसे छोड़ दो, यह मर जायगा, इसका कोई क़सूर नहीं। मैंने ही इसे उकसाया था और यह मुझे भगाकर लाया है। दरअसल मैं इसके साथ भाग कर आई हूँ यानी मैं ही इसे भगाकर लाई हूँ।"

हुज़ूर ने मुस्कराकर कहा—"देखो-देखो, कैसी वकीलों की-सी बातें करती है। तेरी सब शेखी निकाल दूँगा, ज़रा ठहर तो, पहले मुझे इससे निपट लेने दे। क्यों बे उल्लू के पट्ठे!"

उल्लू के पट्ठे ने हाँपते हुए कहा—"मैंने किसी को नहीं भगाया।"

"इसे इसी तरह रहने दो।" हुज़ूर ने फ़ैसला सुनाया—"जब तक हम खाना वग़ैरह खायेंगे।"

यह कहकर उन्होंने मुँह फेर लिया और बनिये से बातें करने लगे—"मैं मौज़ा धलेरकोट से आ रहा हूँ। यह किसान इस ख़ूबसूरत लड़की को भगाकर ले आया है। चार दिन से मारा-मारा इसकी तलाश में घूम रहा हूँ। आज यह दोनों 'प्रेमी-प्रेमिका' हाथ लगे हैं। कोहाले से पार जाने की कोशिश में आये थे। लेकिन मैं इन्हें कब छोड़ने वाला था। मैं उस रास्ते को सूँघ लेता हूँ जहाँ से मुजरिम एक बार निकल जाय। अब यह बदमाश हामी नहीं भरता। एक तो जुर्म किया है, उस पर यह सीना-ज़ोरी।"

बनिया हाथ जोड़कर बोला—"हजूर हम तो हजूर की जान-माल को दुआ देते हैं। आपकी बरकत से इलाक़े में बिलकुल शान्ति है। चोरी, चकारी, डकैती का क़रीब-क़रीब खात्मा हो गया है। ये किसान लोग बहुत निडर और बेशरम होते हैं। अब उसकी तरफ़ देखिए, दूसरे की बहू-बेटियों को ताकना कहां की शराफ़त है। और फिर इन्हें इस तरह भगाकर ले जाना। राम-राम, हजूर ऐसे मुजरिमों को तो पूरी-पूरी सज़ा मिलनी चाहिये।"

हुजूर ने उस युवती लड़की की तरफ़ ताकते हुए कहा—"क़ानून यही कहता है, शाहजी। हम तो क़ानून के बन्दे हैं। अगर कोई किसी औरत को भगायेगा या किसी की बहू-बेटी पर हाथ डालेगा तो हम उसे ज़रूर अपराधी ठहरायँगे और उसे सज़ा देंगे। वह मुर्ग़ा आपने

अभी हलाल करवाया कि नहीं? शहबाज़, जा, शाहजी से मुर्ग़ा लेकर हलाल कर।"

युवक किसान का चेहरा ज़मीन से लगता जा रहा था। उसके शरीर से पसीना बह रहा था लेकिन उसने सोचा यह कोई रहस्य-पूर्ण अज्ञात शक्ति थी जिसने युवक किसान को यूँ कष्ट उठाने पर मजबूर कर दिया और यह बनिया इस किसान की तक़लीफ़ पर क्यों इतना प्रसन्न है, यह खच्चर क्यों इतनी घबराई हुई निगाहों से इस दृश्य को देखने लगी है। अकस्मात् दो गुलदुमें एक झाड़ी से एक साथ उड़ीं और खुशी से चीखें मारती हुई ग़ायब हो गईं। यह गुलदुमें, उसने सोचा, एक दूसरे को भगाकर ले जाती हैं, एक दूसरे के साथ भाग जाती हैं, एक दूसरे से प्रेम करती हैं लेकिन इनकी पीठ पर क्यों कोई पत्थर नहीं रखता और यहाँ क्यों हर उस मनुष्य के सीने पर पत्थर की सिल रख दी जाती है जिसके दिल में किसी के लिए प्रेम की ज्वाला प्रज्वलित हो उठे? यह कैसा अन्धेर है!

शहबाज़ ने मुर्ग़ा पकड़ लिया। मुर्गा चिल्ला रहा था—"कुड़ कुड़ कुड़ कुड़ैं कुड़ैं' और उसे वह बूढ़ा किसान याद आ गया जो अपनी पोती को मुर्ग़े की बोली सुनाकर खुश कर रहा था और जिसका बेटा लाम पर गया हुआ था। युवक किसान के सब्र का बाँध अब टूटने को था, इसका गला रुँध गया और वह कराह रहा था—"मेरे अल्लाह, मेरे अल्लाह!"

'मेरे अल्लाह!' लेकिन सृष्टि की अज्ञात शक्ति खामोश थी। किसान की यह सरल आशा कि यह अज्ञात शक्ति उसे बचायेगी, पगडंडी की झूठी आकांक्षा के समान थी। क्योंकि वास्तव में आकाश कहीं नहीं है। इसकी हक़ीक़त भ्रम जाल की-सी है। जो चीज़ न हो उससे किसी को क्योंकर सहायता पहुँच सकती है?

लड़की एक बार आवेश में आकर उठी और उसने पत्थर की सिलें अपने हाथों से परे दे मारीं। किसान पसीने में तर-बतर

उठ खड़ा हुआ। लड़की उसके गले से चिमट गई, रो-रोकर कहने लगी—

"स्वीकार कर लो, भगवान के लिये स्वीकार कर लो। मैं मर जाऊँगी, तुम भी मर जाओगे।" फिर वह हुज़ूर को सम्बोधन करके कहने लगी—"आप इसे कुछ न कहिये, मैं स्वीकार करती हूँ कि यह मुझे ज़बरदस्ती भगाकर लाया है, मैं इसके साथ रहना पसन्द नहीं करती, मैं इससे नफ़रत करती हूँ। मैं अपने मां-बाप के पास वापस जाने को तैयार हूँ। अब आप इसे कुछ न कहिये। मैं हर एक आदमी के सामने यह बयान देने को तैयार हूँ। परमात्मा के लिये इसे छोड़ दीजिये।"

तीसरा पहर गुज़रता जा रहा था। पहाड़ों की छायाएँ निचली वादियों को अपने तिमिर में लपेट रही थीं। अब वह बहुत विकल था। थकन से तलवों, टखनों, और घुटनों में हलका-हलका दर्द महसूस होने लगा था। जैसे उसकी टाँगें लकड़ी की टाँगें हों और एक-एक जोड़ अलग-अलग हो। बहुत देर तक रास्ते पर वह अकेला चलता रहा। उसके विचार निराशाप्रद और कल्पना उन्मादमय होती चली जा रही थीं। मनुष्य अभी मनुष्य नहीं है। यह युद्ध जो स्वतंत्रता, सभ्यता और न्याय के लिये लड़ा जा रहा है शायद अन्तिम युद्ध न होगा। अन्तिम युद्ध शायद इस निर्मम भावना के विरुद्ध होगा जो मानव-प्रेम के स्रोत पर सिल रखकर जीवन के इस रस को सदा के लिये खुश्क कर देना चाहती है। लेकिन यह युद्ध कब लड़ा जायगा? कब—कब? शायद तब तक यह जीता न रहेगा, ज़िन्दा न होगा। अपने जीवन में प्रतिद्रोह की इस निराश्रय भावना से वह कभी आलिंगित न हो सकेगा जिसकी प्यास से उसकी आत्मा का कण-कण काँप रहा है। व्यथा और क्षोभ से उसकी आंखों में आँसू भर आये और उसके क़दम भारी हो गये। रास्ते में उसे मज़दूरों के कई क़ाफ़िले मिले जो नमक के ढले उठाये हुए अपने घर जा रहे थे। पहाड़ी देहातों में नमक इतना मँहगा होता है कि ये

लोग बनिये से ख़रीद कर इस्तेमाल करने की सामर्थ्य नहीं रखते। सामर्थ्य ?... सामर्थ्य ? आख़िर यह किस चीज़ की सामर्थ्य रखते हैं ? यह तो प्रेम करने की भी सामर्थ्य नहीं रखते...उसने सोचा कि उसे ऐसी बातें सोचने का कोई अधिकार नहीं। वह जवान है, सुखी और अविवाहित है, मिडिल स्कूल का हेडमास्टर है। जीवन की सारी खुशियाँ उसे प्राप्त हैं। कल प्रातः उसे अपनी नौकरी पर हाज़िर हो जाना है; लड़कों को पढ़ाना है—सच बोलो, माँ बाप का सम्मान करो, हाकिम का हुक्म मानो, बड़े होकर किसी औरत को भगाओ मत, यह बनिये की दुकान है, मुर्ग़ा बोलता है कुकड़ूकूँ—

एक ख़च्चर वाला अपना ख़च्चर लिये जा रहा था। ख़च्चर पर पलान कसा हुआ था लेकिन असबाब नहीं लदा हुआ था। शायद किसी जगह सामान पहुँचाकर वापस लौट रहा था। उसने ख़च्चर वाले से पूछा—

"कहाँ जा रहे हो ?"

"खरन के दर्रे तक।"

"क्या यह दर्रा मौज़ा धलेर के रास्ते पर है ?"

"हाँ, उससे पाँच छः मील परे।"

"मुझे इस ख़च्चर पर चढ़ाकर ले चलो, क्या लोगे ?"

"जो जी में आये दे देना, मैं तो ख़च्चर वापस ले जा रहा हूँ।"

"आठ आने।"

ख़च्चर वाले ने स्वीकृति में सिर हिला दिया और वह कूदकर ख़च्चर पर सवार हो गया। ख़च्चर ने बदन कसमसाया, कान हिलाये, नथने फटफटाये और जब देखा कि अब कोई चारा नहीं तो चल पड़ा। ख़च्चर वाला हृदय-भेदी आवाज़ में गाने लगा—

("किसी की ख़ाक में मिलती जवानी देखते जाना !")

खरन के दर्रे पर वह ख़च्चर वाले से विदा हुआ और उससे रास्ता पूछकर आगे बढ़ा। चलते-चलते वह रास्ता भूल गया, या शायद उसने

समझा वह रास्ता भूल गया है और किसी अजीब दुनिया में आ निकला है। यहाँ पगडण्डी एक तल्ले पर आकर ख़त्म हो जाती थी। इस जगह जंगली गुलाब खिले हुए थे और दो तरुण लड़कियाँ कांधों पर सोंटियाँ रखे एक सब्ज़ चट्टान पर बैठी लाजू गा रही थीं :—

लाजू आया, लाजू आया
भला केड़े कम्मे लायावे लाजुआ
लाजू आया, लाजू आया
चन महाड़ा चढ़िया, भला बटियाँ दे ओले

उसे देखकर पहले तो वह खिलखिलाकर हँस पड़ीं, फिर शरमा गईं और उन्होंने गाना बन्द कर दिया। मुसाफ़िर एक लम्बी साँस लेकर उनके निकट बैठ गया और कहने लगा—"और गाओ, मुझे लाजू बहुत पसन्द है।" यह कहकर वह आहिस्ता-आहिस्ता गुनगुनाने लगा।

चन महाड़ा चढ़िया, भला बटियाँ दे ओले
वे लाजूआ—
कीकर मलसाँ, भला जन्दरियाँ दे ओले
वे लाजूआ—
लाजू आया, लाजू आया।

लड़कियों ने हैरान होकर कहा—"तुम्हें तो 'लाजू' आता है?"

"हाँ, बल्कि मेरा तो नाम ही लाजू है।" उसने हँसकर झूठमूठ ही कह दिया—"और तुम्हारा नाम क्या है?"

एक ने कहा—"बानो"

दूसरी बोली—"बीरी"

उसने कहा—"अब तो लाजू गाओ।"

बानो और बीरी थोड़ी देर एक दूसरे से कान में बातें करती रहीं। उनके ढंग कहे देते थे कि वह किसी शरारत पर आमादा हैं। फिर उन्होंने शोख़ सुरों में गाना शुरू किया और वह अपने हाथों से ताल देने लगा—

लाजू आया, लाजू आया
भला केढ़े कम्मे लाया वे लाजुआ
लाजू आया, लाजू आया
भला जोड़े गंडन लाया वे लाजुआ

गाते-गाते खिलखिलाकर वे हँस पड़ीं और मुसाफ़िर भी उनके इस सरल विनोद से बहुत ख़ुश हुआ और उनकी हँसी में शामिल हो गया। कहने लगा—"अगर लाजू को बानो और बीरी के जूते गाँठने के लिये कहा जाय तो उसे कभी इन्कार न होगा।" प्रशंसा के इस वाक्य के बाद उसने बानो और बीरी के कपोलों पर वह जंगली गुलाब के फूल खिलते देखे जो उसके क़रीब बेलों में खिले थे।

कुछ देर तक वह उनके गीत सुनता रहा, और उनके गीतों में शरीक होता रहा। फिर जब सूर्य पश्चिमी पर्वत-शृंखला पर झुक गया तो उसने चलने की ठानी।

बानो ने धीमे लहजे में कहा—"अच्छा आज यहीं रह जाओ। हम तुम्हें अपने घर में जगह देंगे। तुम्हें सोने के लिये एक खाट चाहिये और एक कम्बल, ठीक है न?"

बानो की आवाज़ में एक हलका-सा प्रकम्पन था और उसका चेहरा असाधारण तौर पर लाल हो गया था।

बीरी ने शोख़ निगाहों से मुसाफ़िर की ओर देखा।

और मुसाफ़िर ने इन पहाड़ी सुन्दरियों की ओर देखते हुए अपने दिल में कहा—नहीं, यह बात ठीक नहीं है, मैं इन उलझनों में पड़ना नहीं चाहता।

'यद्यपि मुझे भी यह महसूस होता है कि तुम्हें बचपन से जानता हूँ। मैं तुम्हारे साथ छुटपन से ही खेलता और मुहब्बत करता चला आया हूँ, मैं शायद तुम्हारे बचपन का साथी हूँ, तुम्हारे लापरवा और मौजी भाई का मित्र, तुम्हारे गीतों का लाजू। मैंने नदी के नीले पानी में तुम्हारे साथ तैरते हुए तुम्हारे सुनहरी बालों की चोटी को

पकड़कर यूँ घसीटा है कि तुम चिल्ला उठी हो। तुम्हारे हाथों में अपना हाथ दिये मैं अनेक बार वटंग के वृक्ष के नीचे नाचा हूँ और आमलूक तोड़कर खाये हैं। तरनारी के फूलों के हार बनाकर एक दूसरे के गले में पहनाये हैं। कई-कई बार जब चन्द्रमा अख़रोटों के झुण्डों के पीछे से उदय हुआ है, मैंने चाँदनी और अँधियारे की काँपती हुई शतरंज पर तुम्हारी प्रतीक्षा की है। तुम्हारी लचकती हुई कमर में हाथ डालकर तुम्हारे कसमसाते हुए शरीर को अपने सीने से लगाया है। मैं इन फूलों की पंखुड़ियों की तरह चंचल और कोमल होठों का मज़ा जानता हूँ। तुम्हारी साँस की मृदुलता और स्याह आँखों में चमकते हुए मोतियों की आभा से परिचित हूँ। लेकिन मैं इन उलझनों में पड़ना नहीं चाहता। मैं अपने दिल में उस लौ को सुरक्षित कर लेना चाहता हूँ जो शीशे की चारदीवारी के बाहर फूल की तरह सुन्दर परवानों की तरफ़ तकती है और जलती और जगमगाती रह जाती है—मुसाफ़िर ने निगाह फेरकर नीचे गाँव की तरफ़ देखा। घाटी के आधे दायरे के नीचे गाँव एक नीरव नदी के किनारे सोया पड़ा था। खेतों में मकई के पौदे चुपचाप खड़े थे। किनारों पर पीली-पीली घास किसान के हाथ और दरांती के संगीत की प्रतीक्षक मालूम होती थी। कच्चे घरों की छतों पर ऊदे रंग की बजरी ढलती हुई धूप में चमक रही थी। इन छतों के किनारों पर कहीं-कहीं पीली, हरी और लाल अल्लें रखी थीं या गोल-गोल लाल मिर्चें। मुसाफ़िर ने फिर निगाह फेरकर यानो और बीरी की ओर देखा और पूछा—"मौज़ा धलेर यहाँ से कितनी दूर है?"

यानो ने उदास लहजे में कहा—"कोई तीन चार मील।"

बीरी बोली—"दिन ढलता जा रहा है।"

मुसाफ़िर उठ खड़ा हुआ, बोला—"अभी बहुत समय है, अगले गाँव पहुँच जाऊँगा।"

मुसाफ़िर पगडण्डी पर चलने लगा। यह पगडण्डी चीड़ और

झाऊ के जंगलों में छिपती हुई कभी नीचे और कभी ऊपर आगे जा रही थी। पहाड़ के आखिरी मोड़ पर यह नीले आकाश से मिल जाती थी। अकस्मात् उसे अनुभव हुआ कि पगडण्डी की अभिलाषा एक विफल प्रयास न था। उसे मालूम हुआ कि यह पगडण्डी पहाड़ के कोने से मुड़ नहीं जाती बल्कि सीधी नीले आकाश में से गुज़रती हुई आगे जा रही है। मुसाफ़िर का दिल किसी अलक्ष्य प्रसन्नता से परिपूर्ण हो गया। उसने सोचा क्यों न वह इसी रास्ते से गुज़रता हुआ नीले आकाश की पगडण्डी पर चलता जाये, सौंदर्य के किसी नये संसार में। उसे विचार आया कि पहाड़ का वह कोना जहाँ यह पगडण्डी ज़ाहिरी तौर से समाप्त हो जाती है एक असीम नीली झील का किनारा है और वह सोचने लगा कि वह अपने सशक्त बाज़ुओं से उसे अवश्य पार करेगा। वह इसमें से तैरता हुआ और नीले पानी को उछालता हुआ आगे बढ़ता चला जायगा। या शायद यह नीला आकाश ही हो; तब भी वह इस सुन्दर आकाश की नीलिमा में वायु का एक हलका-सा झोंका बनकर उड़ जायगा और चारों ओर फैलता जायगा और उसके दिल की ख़ुशी बढ़ती जायगी। यहाँ तक कि वह नीले आकाश की आत्मा में घुल जायगा। मुसाफ़िर को इस विचित्र अनुभव की खुशी में ऐसा मालूम हुआ कि उसका सारा शरीर हलका सूक्ष्म हो गया है और वह तेज़ी से पगडण्डी पर छलाँगें लगाता हुआ भागने लगा।

फिर अचानक वह ठिठक गया और पीछे मुड़ कर देखने लगा।

सूर्य चोटी पर अस्त हो रहा था। जंगली गुलाब की बेलों का सहारा लिये दो सोने की मूरतें उसकी ओर तक रही थीं। झुटपुटे की निस्तब्धता में उसके निकट से गुज़रती हुई हवा उदास मालूम होती थी, उदास और मीठी, जैसे उसने जंगली फूलों की डण्डियों का सारा शहद बाहर खींच लिया हो, सारी वायु में जंगली गुलाब की सुगन्ध और संध्या की रंगीनी घुलती हुई मालूम देती थी। वह कुछ देर तक उसी

जगह खड़ा हुआ उनकी ओर तकता रहा, फिर उसने बाज़ू घुमाकर उन्हें बिदा कही और रास्ते पर मुड़ गया।

लेकिन अब उसके मन की असाधारण प्रसन्नता में एक अजीब उदासी आ गई थी। उसके क़दम भारी हो गये और वह चलते-चलते हर्ष और विषाद की इन दोनों सीमाओं के बीच खड़ा होकर सोचने लगा कि न तो औरतें ही सुन्दर होती हैं और न ही गुलाब के फूल, वरन् समय के ऐसे ही कुछ एक-क्षण, जो जीवन की सम्पूर्ण निशा में प्रकाशमान तारों की तरह झिलमिलाते रहते हैं।

—o—

: ३ :

वेक्सीनेटर

"जब मैं एफ० ए० में फ़ेल होकर इस गांव में वेक्सीनेटर बनकर आया, तो वह चीज़, जिसने सब से अधिक मुझे अपनी ओर आकर्षित किया, रेशमाँ थी। रेशमाँ की सुन्दरता की चर्चा तो मैं इससे पहले भी बहुतों से सुन चुका था। विशेष कर रास्ते में एक पुलिस सार्जेण्ट ने, जब उसे मालूम हुआ कि मैं पिंडोर के गाँव में वेक्सीनेटर बनकर जा रहा हूँ, मुझे बताया—"पिंडोर की मनोहर घाटी में तो बहुत सी चीज़ें और स्थान देखने के योग्य हैं—लछमण कुण्ड जिसकी गहराई का पता आज तक कोई अंग्रेज़ भी न लगा सका! जागीरदार साहब का पुराना महल, जिसके चौकोर बुर्ज धूप में सोने की तरह चमकते हैं, और जो आजकल उजाड़ पड़ा है और केवल उसी समय काम में लाया जाता है, जब जागीरदार साहब या उनके मेहमान या लड़के-बाले कभी पिंडोर की घाटी में शिकार खेलने के उद्देश्य से आते हैं। खट्टे अनारों का जंगल, जो पिंडोर की पश्चिमी पहाड़ियों पर फैला हुआ है और जहाँ जंगली सेब, आलूचे और अमलूक के पेड़ भी पाये जाते हैं, जहाँ जंगली गुलाब की बेलें किसी प्रेमी की बाहों की भाँति उन फलदार वृक्षों से हर समय लिपटी रहती हैं और जिनकी गोद में बनफ़शे के फूल प्रतिक्षण मुस्कराते और शरमाते हैं। हाँ, पिंडोर की घाटी में बहुत सी

चीज़ें दर्शनीय हैं। लेकिन अगर वहाँ तुमने रेशमाँ को न देखा, तो समझ लेना कि तुमने पिंडोर में कुछ भी नहीं देखा।"

"सचमुच ?" मैंने धीरे से पूछा।

"खुदा की क़सम !"—पुलिस सार्जेण्ट ने एक लम्बी आह भरकर कहा, और घोड़े पर सवार होकर चला गया।

यद्यपि मुझे विश्वास तो अब भी न हुआ, लेकिन रेशमाँ को देखने का चाव दिल में घर कर गया। आख़िर वह भी ऐसी क्या हसीन परी होगी ? इन पुलिस वालों की बातों पर विश्वास कम ही करना चाहिये। और फिर औरतों के विषय में तो उनका यह विश्वास है कि हर औरत सुन्दर होती है; चाहे वह मिट्टी ही की क्यों न हो !

अब तो मेरी हालत उस बूढ़े मुर्ग़े की-सी है जो जवानी चली जाने पर भी अपने को जवान समझता है। लेकिन उन दिनों जब मैं नया-नया वेक्सीनेटर बनकर यहाँ आया था, तो मेरा रंग-रूप बहुत से लोगों के लिये ईर्ष्या का कारण था। इसमें भी संदेह नहीं कि उन दिनों गाँव भर में मैं ही अपने ढंग का सजीला जवान था और फिर एण्ट्रेन्स पास और सफ़ेद लट्ठे की शलवारें पहनने वाला ! ग्यारह रुपये वेतन था, कुलाह पर तुर्रेदार पगड़ी, पाँव में कामदार जूते और चेहरे पर मूछें साइकिल के हैंडिल की तरह मुड़ी हुई। हाँ, वह ज़माना था मेरे बाँकपन का। अब तो यौवन का वसन्त पतझड़ में बदल चुका है।

आह दोस्त, वे भी क्या दिन थे ! काश, तुमने मुझे जवानी में देखा होता ! ग़ालिब के दीवान में एक शेर मुझे बहुत पसन्द है, वह है—वह है... आह, इस समय कमबख़्त मुझे याद नहीं आ रहा है, दिमाग़ चकरा... ज़बान पर आ रहा है, लेकिन... अच्छा...

हाँ, तो मैं रेशमाँ के विषय में कह रहा था, लेकिन मैं रेशमाँ के विषय में क्या कहूँ ?

रेशमाँ की आँखें, उन नीली पुतलियों की अथाह गहराइयाँ, वे आँखें उन दो स्वच्छ व पवित्र झीलों की भाँति थीं, जो किसी ऊँचे पर्वत

की चोटी पर स्थित हों, जहाँ किसी मनुष्य के क़दम भी न पहुँचे हों। रेशमाँ के कोमल होंठ, शरमाये और लजाये-से होंठ—मानों वे अपनी सुन्दरता पर स्वयं लजा रहे हों। उसके कोमल हाथ, सफ़ेद अँगुलियों की पोरें जंगली गुलाब की कलियों की तरह सुन्दर थीं। उसकी चाल—जैसे वसन्त की देवी अपनी समस्त मनोहरता और सौंदर्य को लिये वायु के झोंकों पर इठलाती हुई आ गई हो। उसकी आवाज़ सनोबर के जंगलों में घूमते हुए गड़रिये की बाँसुरी की भाँति मधुर, और शीतल झरनों के स्वर की भाँति लोचदार। उसका क़द—फ़ारसी का एक शेर है, एक बहुत ही उपयुक्त शेर है, लेकिन.. कमबख़्त याद ही नहीं आ रहा है, बिल्कुल ज़बान पर फिर रहा है, आह! क्या खूब शेर था, नज़ीरी का शेर, नहीं, हरफ़ी का, आह! अब स्मरण-शक्ति कितनी कमज़ोर हो गई है! कुछ याद नहीं रहता—कुछ याद नहीं रहता। मुझे अब तो अपनी कवितायें भी याद नहीं। आश्चर्य है, उन दिनों मेरी स्मरण-शक्ति कितनी प्रबल थी!

तो यह थी रेशमाँ, पिंडोर की सुन्दर घाटी की सुन्दरी! निस्सन्देह वह एक दुर्लभ चीज़ थी और लोग दूर-दूर से उसे देखने के लिये आया करते थे। उसके बाप के पास प्रति दिन रेशमाँ के सम्बन्ध के लिये सदेन्श आया करते। कोई पाँच सौ रुपये, कोई एक हज़ार, कोई डेढ़ हज़ार, और कोई मनचला तीन हज़ार रुपये तक देने को तैयार था, लेकिन उसका बाप शायद जवाब में इन्कार करना ही जानता था। कम से कम मैंने तो उसे किसी से हामी भरते नहीं देखा, न सुना—ख़ुदा जाने उसके मन में क्या था! शायद वह अपनी लड़की को किसी बादशाह के साथ ब्याहना चाहता था, और यों रेशमाँ भी तो किसी बादशाह के घर के ही योग्य थी!

लेकिन, जैसा कि मैंने कहा, जवानी बुरी बला है, और जवानी का प्रेम उससे भी अधिक ख़तरनाक! मैंने रेशमाँ को देखते ही समझ लिया कि दुनिया में रेशमाँ केवल मेरे लिये है, और मैं उसके लिये।

और यह ठान लिया कि चाहे उसके बाप को जान ही से क्यों न मार-डालना पड़े, लेकिन अगर विवाह करूंगा, तो केवल रेशमाँ से, नहीं तो जान पर खेल जाऊँगा। उसके सारे घर की हत्या कर डालूंगा, सारे गाँव को आग लगा दूँगा, उसके सामने पहाड़ी पर से नीचे नाले में कूद कर मर जाऊँगा, लेकिन यह कभी न होगा कि मेरे जीते जी मेरी रेशमाँ को कोई और व्यक्ति, चाहे वह जागीरदार का बेटा ही क्यों न हो, ब्याह कर ले जाय। जवानी में आदमी कैसी-कैसी विचित्र बातें सोचा करता है—मूर्खता की बातें—फ़िज़ूल, ख़तरनाक़, अदूरदर्शिता की बातें !

तो साहब ! मैंने रेशमाँ के प्रेम में सिर-धड़ की बाज़ी लगा दी। लोगों को टीका-वीका लगाना कैसा ? हर समय रेशमाँ के पीछे पीछे फिरने लगा, पागल कुत्ते की तरह। वह झरने पर पानी भरने जाती तो मुझे पहिले ही मौजूद पाती। चरवाहों के साथ जंगल जाती, तो मैं भी अपनी तोड़ेदार बन्दूक़ लिये हुए जंगल में पहुँच जाता। मैं उन दिनों गाना भी बहुत अच्छा गाता था; मेरा मतलब है कि मैं माहिया बहुत बढ़िया गाया करता था, और बहुधा लोग मेरे माहिया गाने पर बहुत प्रसन्न होते थे। कहते थे कि कोई मीरासी भी इतना अच्छा माहिया नहीं गा सकता। लेकिन अब वह दिन कहाँ ? अब तो दिन में मुझे दस बार खाँसी की शिकायत होती है। तुम शहर में रहते हो, कभी कोई अच्छी सी दवा ही भेज दिया करो। नहीं तो तुम्हारे शहर में रहने से हमें क्या फ़ायदा ?

ख़ैर ! एक दिन की बात है—मैं किसी निकट के गाँव से चेचक के टीके लगा कर वापस आ रहा था। शाम हो चुकी थी और पश्चिम से हलकी-हलकी हवा चल रही थी। मैं बहुत दुखी था, क्योंकि दिन भर मैं गाँव से बाहर रहने के कारण रेशमाँ के दर्शन से वंचित रहा था, अतः बहुत ही करुण स्वर में धीरे-धीरे—'फ़िराक़े जानाँ में हमने साक़ी लहू पिया है शराब करके।'—गाता हुआ चला आ रहा था। मैं

उस समय बहुत उदास था। मेरी आँखों में शायद उस समय आँसू झलक रहे थे और मुझे अपने आप पर बहुत क्रोध आ रहा था। गाँव की सीमा में दाख़िल होने से पहले रास्ते में एक ख़ूबानी का वृक्ष आता है, अतः जब मैं उस ख़ूबानी के वृक्ष के निकट पहुँचा, तो क्या देखता हूँ कि तने का सहारा लिये अपनी सुनहरी काकुलों को अपने कोमल कन्धों पर बिखराये रेशमाँ खड़ी मेरी राह देख रही है। मैं ठिठककर खड़ा हो गया।

कुछ क्षण सदियों की तरह बीते। फिर रेशमाँ बोली, अपने कोमल और मधुर स्वर में—"जी, आप मुझे क्यों तंग करते हैं?"

मैंने कहा—"इसलिये कि मैं तुम्हें चाहता हूँ, और तुम्हें देखे बिना ज़िन्दा नहीं रह सकता।"

रेशमाँ बोली—"जी, मुझे सब सहेलियाँ ताने देती हैं और फिर आपका इस तरह मेरे पीछे-पीछे फिरना ठीक भी तो नहीं! मैं आपको गालियाँ दूँगी, तो फिर आप..."

मैंने कहा—"तो मैंने कब मना किया है? आप शौक़ से गालियाँ दें। मैं उन्हें सुनता जाऊँगा और फिर इकट्ठा कर लूँगा, फिर फूलों की तरह उनका हार बनाकर अपने गले में पहन लूँगा।"

रेशमाँ बोली—"हम ठहरीं अनपढ़! भला हमें आपकी तरह बातें बनाना कहाँ आता है? लेकिन मैं आपसे फिर कहती हूँ, ख़ुदा के लिये आप मेरा पीछा करना छोड़ दें। अब्बा आपकी जान के गाहक हो रहे हैं। कहते थे—अगर वह लड़का न माना तो उसे क़त्ल कर डालेंगे।"

मैंने सिर झुकाकर कहा—"यह सर हाज़िर है। अभी गरदन उड़ा दीजिये। अगर उफ़ भी कर जाऊँ तो..."

रेशमाँ ने एक अजीब अदा से सिर हिलाकर कहा—"हाय, मैं यह कब कहती हूँ कि आप मर जायँ, लेकिन आख़िर...आप चाहते क्या हैं?"

"मैं कुछ नहीं चाहता।" मैंने अपना हाथ अपने कलेजे पर रख कर कहा—"हाँ, सिर्फ़ यह चाहता हूँ, कि जब तुम यहाँ से चली जाओ तो तुम्हारे प्यारे चरणों की धूल अपने माथे पर लगा लूँ, और तुम्हारा नाम लेता हुआ इसी दम इस संसार से विदा हो जाऊँ।"

रेशमाँ मुस्कराई। एक बालिका की तरह नहीं, बल्कि एक स्त्री की तरह मुस्कराई। उसने पलकें उठाकर एक क्षण के लिये मुझे देखा, फिर वे पलकें गुलाब के फूलों की तरह सुन्दर और कोमल कपोलों पर झुक गई। दूसरे क्षण वह हँसती हुई वहाँ से भाग गई। भागती जाती थी और मुड़ मुड़कर मेरी ओर देखती जाती थी।

कुछ क्षण तो मैं चुपचाप पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा, फिर मैंने भी रेशमाँ के पीछे तेज़ी से भागना शुरू किया। वह एक हिरणी के समान तेज़ भाग रही थी। उसके मुँह से हँसी की चीखें निकल रही थीं। धीरे-धीरे, लेकिन विश्वस्त रूप से, हम दोनों के बीच का अन्तर कम हो रहा था।

अब मैं उसके बिल्कुल निकट आ गया था, लेकिन अभी उसे छू नहीं सका था।

वह अब अधिक तेज़ी से भागने लगी।

लेकिन मैं अब और भी निकट आ गया था और हमारे बीच बिल्कुल थोड़ा-सा अन्तर रह गया था।

"देखो, हमें... हमारा पीछा मत करो... मैं कहती हूँ, यह अच्छा नहीं..."

एक छलाँग लगाकर मैंने उसे जा दबोचा और गोद में उठा लिया।

"अब किधर जाओगी?" मैंने कहा।

"मुझे छोड़ दो... मुझे छोड़ दो... मैं घर जाऊँगी।" उसने धीमे स्वर में कहा।

मैं एक चनार के वृक्ष के निकट जाकर रुक गया और उसे हरी

घास पर धीरे से गिरा दिया, और फिर उसके पास ही सुस्ताने के लिये बैठ गया।

"देखा तुमने ? तुम मुझसे भागकर कहीं नहीं जा सकतीं।" मैंने हँसकर कहा।

वह चुप बैठी रही और अपने बिखरे बाल ठीक करती रही।

हम गाँव से बहुत दूर निकल आये थे। संध्या की लाली ग़ायब हो चुकी थी, लेकिन फिर भी नदी का पानी एक चाँदी के तार की भाँति चमक रहा था। हाँ, पहाड़ों पर अब जंगल नहीं दिखाई देते थे—अंधकार की कालिमा में लुप्त हो चुके थे। कहीं-कहीं तारे भी निकल आये थे।

मैंने रेशमाँ से पूछा—"तुम मुझसे विवाह कब करोगी ?"

"कभी नहीं।"

"क्यों ?"

"तुम तेली हो, हम मुग़ल हैं।" रेशमाँ ने शोख़ी से कहा।

"इससे क्या होता है ?" मैंने रेशमाँ का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा "क्या तुम्हें मुझसे प्रेम नहीं है ?"

"कभी नहीं।"

"तो फिर तुम मेरे पास क्यों बैठी हो ?"

जवाब में रेशमाँ ने मुझे प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखा, फिर सहसा वह कुछ सोचकर काँप उठी और धीरे से कहने लगी—'मैं आज खूब पिटूँगी। अब्बा मुझे ढूँढ रहे होंगे। लेकिन यह कह तो आई थी कि मैं मौसी के यहाँ जा रही हूँ, मगर अब देर भी तो बहुत..."

मैंने बात काटकर कहा—"तुम जैसी नटखट लड़कियाँ इसी योग्य हैं कि उन्हें खूब पीटा जाय।"

रेशमाँ बोली—"मैं जानती हूँ कि तुम मुझे कभी नहीं पीटोगे।"

मैंने कहा—"हाँ, क्योंकि मैं एक तेली हूँ और तुम मुग़लज़ादी हो।"

रेशमाँ ने अपना कोमल हाथ मेरे कन्धे से लगाया, फिर एकदम अपना सिर मेरी छाती पर रख दिया—"तुम कितने नासमझ हो!" उसने एक आह भर कर कहा।

और मुझे ऐसा जान पड़ा कि एकाएक आकाश के सितारे खिलखिला कर हँस पड़े हैं और चन्द्रमा के प्रकाश में सफ़ेद-सफ़ेद बादलों की काँपती हुई कोमल परछाइयाँ किसी अज्ञात प्रसन्नता के कारण नाचने लगी हैं और पछुआ वायु के झोंके चनार के पत्तों में छिप-छिपकर अमर जीवन के गीत गा रहे हैं। मैंने रेशमाँ की लम्बी-लम्बी लटों में उँगलियाँ फेरते हुए महसूस किया कि यह प्रसन्नता मेरे लिये असहनीय होगी। और जब मैंने विवश होकर उसके होठों पर अपने होंठ रख दिये, तो मुझे प्रतीत हुआ कि उन होठों में पहाड़ी मधु की-सी मधुरता है और धधकते हुए अंगारों की-सी गरमी और जलन! दोनों ही विलक्षण अनुभव थे—एक कष्टप्रद प्रसन्नता और एक आनन्ददायक कष्ट!

इसके बाद आठ-दस दिनों का हाल मैं तुम्हें अच्छी तरह नहीं बता सकता। कुछ याद नहीं आता। जीवन एक सुखमय स्वप्न की भाँति बीत रहा था, जिसमें मैं और रेशमाँ ही थे। कुछ विचित्र-सी हालत थी। शराब का-सा नशा, मनोहर संगीत की-सी मस्ती, सारा गाँव स्वर्ग-सा दीख पड़ता था और दूर से जागीरदार साहब के पुराने महल के बुर्ज सोने के कलसों की भाँति चमकते थे—विचित्र और रहस्यमय! मुझे ऐसा लगता था मानो यह समस्त संसार, प्रकृति की सुन्दरता, पक्षियों का कलरव, बेफ़िक्र गड़रियों के ठहाके हमारे ही लिये पैदा किये गये हैं—मेरे और रेशमाँ के लिये, ताकि शाम के झुटपुटे में हम दोनों छिप कर और बाहों में बाहें डालकर गाँव से बाहर किसी नन्हे से उपवन में जा बैठें और इन दृश्यों का आनन्द उठायें।

मगर यह सब कुछ आठ-दस दिन के लिये था। इसके बाद एक क्रूर हाथ ने एक ज़ोरदार झटके के साथ मेरे मनोहर स्वप्न को बिखेर दिया। ठीक उस दिन जब हम दोनों ने गाँव से भाग जाने की सलाह

की थी, रेशमाँ के ज़ालिम बाप ने उसे जागीरदार साहब के बड़े लड़के के हवाले कर किया। यह तो मुझे बाद में मालूम हुआ कि बहुत दिनों से गुप्त रूप से सलाह हो रही थी। जागीरदार साहब का बड़ा लड़का बड़ा दुराचारी है। जिस तरह बड़े आदमियों की आदत होती है, वह रेशमाँ पर लट्टू था। कहीं शिकार खेलते, आते-जाते देख लिया होगा, बस रेशमाँ के बाप पर डोरे डालने शुरू कर दिये। इधर मेरी लापरवाही का यह हाल कि मुझे उस समय पता चला, जब रेशमाँ शहर में जागीरदार साहब के महल में पहुँचाई जा चुकी थी।

यह चोट इतनी गहरी और अचानक थी कि मैं अपने हवास ठीक न रख सका। लोग कहते हैं कि इस घटना के बाद दो वर्ष तक मैं पागल-सा रहा, सूख कर बिल्कुल काँटा हो गया था, दर-दर घूमता था और लोगों से कहता था—"मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, वह मुझे काटने को आ रही है।" बस यही शब्द थे, जो हर समय मेरी ज़बान पर रहते थे। सुना है कि एक दिन जब मैं जागीरदार साहब के शहर में घूम रहा था, उन्होंने मुझे कहीं देख लिया और जब किसी मुसाहिब से उन्होंने मेरी राम-कहानी सुनी, तो मुझ पर बहुत तरस खाया और इलाज के लिये शिकारपुर के पागलख़ाने में भेज दिया। हाँ, जब मैं दो वर्ष के बाद स्वस्थ हो गया, तो मुझे फिर अपने पुराने स्थान पर उसी घाटी में नियुक्त करा दिया लेकिन इस गाँव में नहीं, बल्कि दूर के गाँव में, जो यहाँ से दस मील दूर था।"

इतना कह कर वेक्सीनेटर चुप हो गया, और हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। रशीद ने धीरे से पूछा—"और रेशमाँ?...तुमने उसे फिर कभी देखा?"

"रेशमाँ जागीरदार साहब के बड़े लड़के के महल में है। यद्यपि वहाँ स्त्रियाँ बहुत हैं, लेकिन रेशमाँ को अपने स्वामी की चहेती होने का गर्व ज़रूर हासिल है। उसके दो लड़के भी हैं...मैंने उसे आठ-नौ वर्ष हुए, उसके बाप के घर इसी गाँव में देखा था, जब वह अपने

भाई के विवाह के अवसर पर यहाँ आई थी। उसका बाप, अब क्या यह भी बताने की ज़रूरत है, कि इस गाँव का नम्बरदार है और इलाक़े का ज़िलेदार। उसका मकान पत्थरों से बना है। तुमने रास्ते में देखा तो होगा, वह जिस पर टीन की छत है और जिसके पीछे एक बड़ा-सा बग़ीचा है. मैंने उसे बग़ीचे में देखा था। वह सुन्दर रेशमी वस्त्र पहने टहल रही थी। उसके साथ उसके दोनों छोटे-छोटे लड़के थे। वह अब बेहद सुन्दर थी। उसकी चाल राजकुमारियों जैसी थी। मैं देर तक बाड़े की ओट में खड़ा उसे देखता रहा। रेशमाँ, जो कभी मेरी पत्नी होती, रेशमी कपड़ों के बजाय वह लाल धारी की भारी क़मीज़ और छींट की क़मीज़ पहन कर मेरे अपने बच्चों को लेकर यूं टहलती, यह सोचकर मेरी आँखों में आंसू भर आये और उन्हें पोंछने की कोशिश किये बिना ही मैं बाड़े की ओट से बाहर निकल आया और उसे गालियाँ दीं। उसके सारे ख़ानदान को जी भरकर और चिल्लाकर कोसा और उस समय तक वहां से न टला, जब तक लोग मुझे वहाँ से खींचकर और घसीटकर दूर न ले गये।

"और रेशमाँ ने तुम्हें कुछ न कहा?" रशीद ने पूछा।

"नहीं, मुझे देखकर वह ठिठक कर खड़ी हो गई। फिर उसने गर्दन झुकाली और चुप-चुप गालियाँ सुनती रही। उसकी आँखों की नीली झीलों से आंसुओं के स्रोत बह निकले और उसने अपने काँपते हुए हाथों से अपने दोनों लड़कों को अपने साथ लिपटा लिया। बाद में जब वह अपने गाँव से चली गई, तो उसकी एक पुरानी सहेली ने मुझे बताया कि उसके इस सवाल पर कि तुमने वहाँ बग़ीचे में खड़ी रहकर उसकी गालियाँ क्यों सुनी, रेशमाँ ने जवाब दिया—"उस समय वह अगर मुझे पीट डालता या जान से भी मार डालता, तो भी मैं वहाँ से न हिलती।"... फिर उसने कहा—"मेरी प्यारी सखी! वे गालियाँ नहीं थीं, फूल थे—मेरे प्रेमी

के, जिन्हें मैंने चुन-चुनकर अपने आँसुओं के तार में पिरो लिया और अपने हृदय की समाधि पर चढ़ा दिया, ताकि प्रेम की समाधि सूनी न रहे...।"

"लेकिन," वेक्सीनेटर ने करुण स्वर में अपनी कहानी समाप्त करते हुए कहा—"मुझे अब किसी पर क्रोध नहीं, किसी से प्रेम नहीं, मैं अब किसी का लिहाज़ नहीं करता। पहले चेचक के टीके मुफ़्त लगाता था, अब दो आने लिये बिना किसी के बाज़ू को हाथ तक नहीं लगाता। मुझे किसी की परवाह नहीं। मैं अपना रुपया ड्योढ़े सूद पर उधार देता हूँ। इस गाँव में सिवाय रेशमाँ के बाप के सब मेरे ऋणी हैं। वे मुझे कंजूस और ज़ालिम कहते हैं, लेकिन उन्होंने कब मेरा भला चाहा? उनका बस चले, तो मुझे आज मार डालें, लेकिन मुझे किसी की परवाह नहीं, किसी से प्रेम नहीं, मेरे पास रुपया है, ज़मीन है, बाल-बच्चे हैं, तीन निकाह कर चुका हूँ, मुझे किसी की परवाह नहीं, किसी से प्रेम नहीं, किसी पर गुस्सा नहीं। मैं जागीरदार साहब की वफ़ादार प्रजा हूँ, उनका ग़ुलाम हूँ।"

"क्या सचमुच तुम्हें किसी पर ग़ुस्सा नहीं आता?" रशीद ने तीक्ष्ण दृष्टि से वेक्सीनेटर की ओर देख कर पूछा।

वेक्सीनेटर घबरा-सा गया। आँखें नीची करके बोला—"नहीं, हरगिज़ नहीं। मेरा दिल साफ़ है, लेकिन दोस्त....." अब वेक्सीनेटर ने अपनी निगाहें ऊपर उठा लीं और रशीद की ओर लज्जित-सी दृष्टि से देखकर कहने लगा "मैं एक बात तुमसे कहना चाहता हूँ। उसे कहते समय मेरा सीना फटा जाता है, और मैं तुम से यह बात कहे बिना नहीं रह सकता। वह बात जागीरदार साहब के इस पुराने महल के बुर्जों के विषय में है। मैं इन्हें धूप में सोने की तरह चमकते हुए देखकर पागल हो जाता हूँ। मुझे ऐसा लगता है, मानो वे मुझ पर हँस रहे हैं, मुझे चिढ़ा रहे हैं। मैं उन्हें साफ़ कहते हुए सुनता हूँ—'तुम हमें नहीं जानते। हम अब भी तुम्हारी दुनिया को बरबाद कर सकते

हैं, तुम्हारे सुख और शान्ति को धूल में मिला सकते हैं, तुम्हारे जीवन के उल्लासों को पाँव-तले रौंद सकते हैं। तुम हमें नहीं पहिचानते। हा! हा! हा!'

"और मैं पागल हो जाता हूँ, और सोचता हूँ कि जब तक ये चमकते हुए बुर्ज मौजूद हैं, मेरे मन को शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। बहुधा मेरे मन में विचार उठता है कि एक-दो रुपये की बारूद लेकर मैं रात के समय इस पुराने महल के निकट जाऊँ और बारूद लगाकर भक से इन बुर्जों को उड़ा दूं, तो .. तो ... लेकिन मैंने हर बार इस विचार को मन में ज़ोर से दबा दिया है।"

और वेक्सीनेटर ने रहस्यमय लहजे में रशीद की ओर झुककर कहा—"लेकिन एक दिन मैं इस काम को अवश्य पूरा कर के छोड़ूंगा.....।"

: ४ :

स्वर्ग और नरक

ज़ेनी के बारे में मैं क्या जानता हूँ, यह तो मैं दावे से कुछ नहीं कह सकता। मनुष्य के मानसिक उतार-चढ़ाव समुद्र के ज्वार-भाटे की तरह दिल के किनारे पर आते हैं और प्रायः बहुत ही मनोहर, परन्तु अस्थायी और अस्पष्ट चिन्ह छोड़ जाते हैं और प्रायः यह अस्पष्ट से चिन्ह लहरों के दूसरे रेले में ही इस तरह नष्ट हो जाते हैं कि फिर उनका नाम-निशान भी नहीं मिल सकता। या फिर नये चिन्ह अपनी नई सजावटों और सुन्दर रूपों से नई सुन्दर कैफ़ियतें पैदा कर देते हैं और उनकी गोद में उस किनारे की रेत का हर ज़र्रा गुन-गुना उठता है—क्या इससे पहले भी ज़िन्दगी थी या यह जीवन-संगीत की एक बेचैन लय है?

लेकिन कुछ चिन्ह इतने अस्थायी और अस्पष्ट नहीं होते और वे जीवन-तट पर ऐसी तस्वीरें खींच देते हैं जो मुद्दत तक क़ायम रहती हैं। ऐसी ही तस्वीरों में एक तस्वीर ज़ेनी की भी है, और दरअसल एक ही नहीं बल्कि तीन। क्योंकि जब कभी मुझे ज़ेनी का ख़याल आता है तो एक ही समय में उसकी तीन विभिन्न तस्वीरें सामने आ जाती हैं, तीन विभिन्न चित्र, तीन विभिन्न रूप, निगाह के तीन विभिन्न कोण। जिस तरह सात रंगों से मिलकर इन्द्रधनुष बनता है इसी तरह

इन तीन तस्वीरों की तरतीब से ज़ेनी के जीवन की कहानी बन जाती है। लेकिन यह जीवन इन्द्रधनुष से भिन्न है, बहुत अधिक भिन्न !

देखने में तो ज़ेनी इन्द्रधनुष के समान ही सुन्दर थी। मैंने जब पहले पहल उसे देखा तो उस समय मैं सात पुलों वाले शहर के सबसे सुन्दर पुल अमीराकदल पर झुका हुआ जेहलम की सतह पर तैरती हुई दुनिया को देख रहा था। यों ही बेकार-सा, आवारा-सा, उकताया हुआ, श्रीनगर की दिलचस्पियों को एक नीरस सतही ढंग से देख रहा था। शिकारों के लाल-लाल फूलों से कढ़े हुए पर्दे एक तरफ़ को हटे हुए थे और उनमें कहीं मोटे-मोटे मर्दों के साथ परियों की सी ख़ूबसूरत औरतें सवार थीं, जिनके चेहरे और जिनके सुनहरे बुन्दे दोपहर की धूप में एक से ढंग से चमक रहे थे, कहीं स्वस्थ, सुन्दर नौजवानों के साथ भद्दी और बदशक्ल औरतें अपने बेहतरीन लिबास पहिने बैठी थीं और अपने सौभाग्य पर नाज़ कर रही थीं। जो औरत जितनी ज़्यादा बदसूरत थी वह उतना ही अच्छा और भड़कीला लिबास पहिने थी। दरअसल पर्दे की रस्म तो इन्हीं औरतों के लिये बनाई गई थी और उनके पतियों के चेहरे कम से कम उस वक्त तो यही कह रहे थे। बेचारे दूसरे शिकारों में बैठी हुई ख़ूबसूरत औरतों को घूर-घूर कर अपनी हानि की पूर्ति करना चाहते थे और उनकी अपनी पत्नियाँ अत्यन्त आकर्षक, मीठी आवाज़ में हँस-हँसकर उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने की कोशिश कर रही थीं। कम-से-कम मुझे उनकी आवाज़ बहुत मधुर मालूम हुई। मीठी, जैसे कोयल की कूक, और आख़िर कोयल का रंग भी तो काला ही होता है !

शिकारे ख़ूबसूरत और बदसूरत लोगों से लदे हुए थे, लेकिन उनमें जीवन की हरकत, व बेचैनी, सब कुछ मौजूद था। वे पानी की सतह पर भागते हुए जा रहे थे। लाल-लाल पर्दे हिलते हुए दिखाई देते। भद्दी शक्लें ख़ूबसूरत तस्वीरों में बदल जातीं, ठहाके और हाँजियों के गीत एक ही गीत बन जाते और वे शिकारे दरबार-हॉल

के सामने उसके सफ़ेद-सफ़ेद खम्भों के पास पहुँचकर वेनिस नगर का सा दृश्य पेश करते हुए एकदम मोड़ पर ग़ायब हो जाते। लेकिन यह हरकत, यह ज़िन्दगी, उन लम्बे-लम्बे दूसरे दरजे के डोंगों या हाउस-बोटों में न थी जो पानी की सतह पर चुप-चाप बदनुमा बत्तख़ों की तरह तैर रहे थे। उनकी खिड़कियाँ बन्द थीं लेकिन पर्दे लटक रहे थे। सिर्फ़ एक हाउस-बोट में एक खिड़की खुली थी। खिड़की के दोनों ओर दो अंगरेज़ औरतें बैठी हुई स्वेटर बुन रही थीं। क्या ये लोग श्रीनगर में स्वेटर बुनने आते हैं, या मेरी तरह पुल के जंगले के समीप खड़े होकर केवल तमाशा देखने के लिये ?

और फिर मुझे उस समय ज़ेनी दिखाई दी। जेहलम के पानी का एक ही रेला उसे मेरे दिल के किनारे के क़रीब खेंच लाया। वह एक छोटे से डोंगे के किनारे पर खड़ी किश्ती का रुख़ बदल रही थी। रुख़ बदलने का चप्पू उसके हाथ में था और चाँदी का एक 'झुमका' उसके कान में किसी खामोश गीत की धुन पर काँपता हुआ मालूम होता था। फिर जैसे वह बिजली की तेज़ी की तरह पुल के नीचे से गुज़र गई और मुझे डोंगे का दूसरा सिरा नज़र आया। यहाँ एक लम्बी सी डांड लिये एक ग्यारह-बारह साल का लड़का डोंगे को खे रहा था। उसका गोल सुर्ख़ सफ़ेद चेहरा और सर पर गोल नक़शीन टोपी भी पुल के नीचे ग़ायब हो गई। और जब मैंने मुड़कर देखा तो वे पुल के दूसरी तरफ़ आ चुके थे। वे डोंगे को निचले घाट पर लगाने के लिये रुख़ बदल रहे थे। डोंगे की सब खिड़कियाँ खुली थीं और उन खिड़कियों के पीले-पीले पर्दे हवा में लहरा रहे थे। मैंने कनपटियों पर हाथ का साया करते हुए डोंगे का नाम पढ़ा, जो धूप में चमकते नीलम के टुकड़े की तरह चमक रहा था—"The Heaven" "स्वर्ग"। यह नाम शायद किसी ऐश-पसन्द यात्री या अंगरेज़ पादरी ने रक्खा होगा। "स्वर्ग" अब निचले घाट के क़रीब आ रहा था। उसके ड्राइंग-रूम की बड़ी खिड़की के ऊपर एक चौकोर बोर्ड लटक रहा था। "To Let";

स्वर्ग किराये के लिए ख़ाली था। मैं जंगले से हटकक एरा दो मिनट उसकी तरफ़ देखता रहा। ज़ेनी और छोटा लड़का अब उसे किनारे पर बाँध रहे थे। एकाएक मेरे दिल में एक ख़्याल आया और मैं तेज़ी से अमीराकदल के पुल से गुज़रता हुआ निचले घाट की सीढ़ियों की तरफ़ चला गया।

ज़ेनी ने मुझे देखते ही सर झुकाकर सलाम किया। फिर वह डाँड का सहारा लिये एक अजीब झिझक के साथ किश्ती के किनारे पर खड़ी हो गई और छोटे लड़के से बोली—"अज़ीज़ा, साहब को हाउस बोट दिखाओ।"

अज़ीज़ा हँसता हुआ उठा। वह यों ही हँस रहा था, बिना किसी कारण के, कश्मीरी लड़कों की तरह। उसके दांत, जो टूथ-पेस्ट के इस्तेमाल के बिना ही असाधारणतया सफ़ेद थे, उसके लाल होंटों के बीच मोतियों की लड़ी की तरह चमक रहे थे। उसने टोपी अपने सर से उतारकर बेपरवाही से ज़ेनी के क़दमों में फेंक दी और फिर ज़ेनी ने जिस मुलायमियत और स्नेह-भरी निगाहों से उसे देखा है, उसे कुछ मैं ही जानता हूँ। उसकी आँखें अज़ीज़ा की इस मासूम शोख़ी पर एकदम इस तरह चमक उठीं जैसे प्रभात के समय डल के निस्तब्ध नीले पानी पर सूर्योदय हो जाय। और जब मैं अज़ीज़ा के साथ ड्राइंग रूम में दाख़िल हुआ तो ज़ेनी की तस्वीर आँखों के सामने ही थी।

अज़ीज़ा कहने लगा—"यह ड्राइंग-रूम है, यह इस तरफ़ खाने वाली मेज़ है, यह लिखने की मेज़।"

"वह ?"

अज़ीज़ा ने योंही सर हिलाते और मुस्कराते हुए कहा—"वह ज़ेनी है, मेरी मासी, यह हाउस-बोट ज़ेनी के शौहर का है। वह नौकरी की तलाश में सोपुर गया है। यह, इस अलमारी में चीनी के बरतन, दो सेट, चमचे, पिर्च, यह खाने के बरतन, दो गैस लैम्प।"

"अच्छा अच्छा आगे चलो।"

"यह सोने का कमरा है, वह दूसरा कमरा भी सोने का है। इनमें पाँच पलंग आ सकते हैं। मैं और ज़ेनी इस कमरे में रहते हैं, वह छोटा सा कमरा, जो किचन के निकट डोंगे के दूसरी तरफ़ है...।"

"अच्छा चलो, किचन दिखाओ।"

सब कुछ देख लिया। उस छोटे से दूसरे दर्जे के डोंगे को जिसे ज़ेनी और अज़ीज़ा गर्व के साथ अपना बोट कहते थे। ज़ेनी और अज़ीज़ा के होने वाले साहब ने, जिसे पंजाब में उसके सब दोस्त उसके बेढंगेपन के कारण "लगड़ बगड़ या चर्ख़" कहते थे, सब कुछ देख लिया। लेकिन ज़ेनी को बार-बार देखकर भी उसके दिल की प्यास न बुझी।

"ज़ेनी!" मैंने अपनी पतलून पर से मिट्टी का एक काल्पनिक कण उड़ाते हुए पूछा—"इस.. ज़ेनी, इस डोंगे का, मेरा मतलब है, इस हाउस-बोट का किराया क्या होगा?"

ज़ेनी ने अपनी बारीक आवाज़ में कहा—"क्या साहब यही रहेगा?"

"हाँ, हाँ, इसी बोट में।"

"तब यह किराये के लिये ख़ाली नहीं है।"

"अरे......!" मेरे मुँह से एकदम निकला—"वह क्यों?"

अज़ीज़ा हँसते हुए बोला—"साहब, हमें वुल्लर जाना है। वास्तव में सोपुर जाना है, परन्तु रास्ते में वुल्लर आयेगी, झील वुल्लर और मानस बल। हम यह डोंगा लेकर सोपुर जायंगे जहाँ ज़ेनी का घर वाला गया है। फिर हम उसको लेकर वापस आयेंगे। अगर साहब को वुल्लर देखना है तो मंजूर। हम सब कुछ दिखायेंगे और किराया भी थोड़ा होगा। अगर साहब को इधर ही रहना है तो फिर हम मजबूर हैं।"

मैं थोड़ी देर खड़ा सोचता रहा। अज़ीज़ा का हँसता हुआ अबोध सा चेहरा बहुत आशापूर्ण था, जैसे वह विनय-पूर्ण अन्दाज़ में कह रहा

हो—'चलो साहब, वुल्लर देखने चलो साहब।' मैंने ज़ेनी की तरफ़ देखा। ज़ेनी का चेहरा आँचल की ओट में था। क्या वह भी अपने पति से मिलने के लिये तड़प रही थी? और तू ....ओ रसिक, आवारा यात्री! तू इस खतरनाक त्रिकोण को क्यों पूरा करना चाहता है? वासना के दास! क्या तेरे लिये इस दुनिया में कोई और काम नहीं है? कोई अभिलाषा, कोई उद्देश्य नहीं है?

परन्तु दिल के किनारे पर इस प्रकार की लहरें बहुत ही छोटी-छोटी, हलकी और सुखद होती हैं। आईं और चली गईं। और किनारे की रेत अपने चमकते हुए लाखों कणों के साथ हमेशा की भाँति किसी प्रेमी की प्रतीक्षा करती रहती है!

मैंने आहिस्ता से कहा—"अच्छा अज़ीज़ा, आज शाम को तुम इस हाउस-बोट को अमीराकदल के सामने—उस घाट पर—ले आना। कल हम वुल्लर चलेंगे।"

"बहुत अच्छा साहब" अज़ीज़ा ने खुशी के लहजे में कहा।

ज़ेनी का चेहरा अब भी आंचल की ओट में था।

(२)

हरिसिंह हाई स्ट्रीट की तरफ़ जाते हुए (जहाँ मैं ठहरा हुआ था) रास्ते-भर मानव-जीवन की मूर्खताओं पर विचार करता रहा। सौंदर्य क्या है? और मनुष्य बदसूरती से भी अधिक सौंदर्य से क्यों प्रभावित होता है? सुन्दर फूल जब मुरझा जाता है तो उसे आप पाँव तले क्यों रौंद देते हैं? और क्यों एक स्त्री पाँच बच्चे जनने के बाद आपकी प्रशंसात्मक दृष्टि की अधिकारिणी नहीं रहती? यह क्योंकर होता है कि एक तनदुरुस्त किसान दिन भर ईमानदारी और सच्चे दिल से काम करता है और दिन भर परमात्मा को याद करता हुआ भी अपने और अपने बाल-बच्चों के लिये रोटी-कपड़ा नहीं जुटा सकता। और दूसरी ओर वे लोग भी हैं जो अपने पापों और बदमाशियों का भारी बोझ उठाये हुए मैदानों की तपती हुई भूमि को छोड़कर इस मनोहर घाटी

में स्वर्ग के मज़े लूटने के लिये आ जाते हैं और इस बात का क्या प्रमाण है कि जिन लोगों ने इस दुनिया में ग़रीब का स्वर्ग हथिया लिया वे अगली दुनिया में भी उसका स्वर्ग नहीं छीन लेंगे? भाग्य? आवागमन? इच्छा? और फिर ये तो ज़िन्दगी की मूर्खताएं हैं। इनके बारे में कुछ सोचा ही क्यों जाय? क्या यही काफ़ी नहीं कि जेनी एक सुन्दरी है और उसका पति सोपुर गया हुआ है और कल हम उसके डोंगे पर सवार होकर वुल्लर देखने जा रहे हैं?

जब मैं अपने निवास-स्थान पर पहुँचा तो सभी मेरी राय से सहमत दिखाई देते थे। गुरुबख़्श अपनी दाढ़ी को क्लिप लगाता हुआ बोला—"मैं भी चलूँगा।"

भैया लाल बोला—"मेरे ख़याल में आठ-दस दिन बीत ही जायँगे। और आख़िर अब यहाँ श्रीनगर में रक्खा ही क्या है? क्यों सरफ़राज़?"

मैंने सर हिलाकर समर्थन किया।

महमूद बोला—"क्यों भई, मैं भी चलूँ?"

अब रह गये इन्द्र और मित्तल। वे दोनों बाँध की तरफ़ सैर को गये हुए थे। जब वापस आये तो उन्होंने भी यही उचित समझा कि कश्मीर आकर जीवन की मूर्खताओं पर विचार करना स्वयं सबसे बड़ी मूर्खता है और उसकी पूर्ति सिर्फ़ एक ही सूरत में हो सकती है और वह यह कि वे भी वुल्लर की सैर में अन्य साथियों का साथ दें।

गुरुबख़्श ने कहा—"आज रात हम डोंगे में ही बितायेंगे। सारा असबाब ले चलो। हारमोनियम, तबला, ग्रामोफ़ोन, कैमरा, दूरबीन, बिस्तर, मिठाई, अंडे, केक, फल और हाँ, मैं भूल गया था, तुम लोग अपने लिये हजामत का सामान भी लेते चलो। और हाँ, भाई सरफ़राज़ तुम वहाँ से उस कमबख़्त डोंगे वाले को भी बुला लाते। उसी से यह सामान उठवाकर ले जाने को कहते।"

"कोई कमबख़्त आदमी उस डोंगे का मालिक-वालिक नहीं है

बल्कि उसकी मालिक तो एक लड़की है।"

"लड़की ?" सबने एकाएक चीख़कर कहा।

"बरस पन्द्रह या कि सोलह का सिन !"

लेकिन उन्होंने मुझे शेर पूरा न कहने दिया। दूसरा मिसरा ज़बान से अदा होने से पहले वे मुझ पर वहशियों की तरह पिल पड़े—"अबे गाउदी।"

"अबे लगड़-बगड़ या चर्ख़ ! उसका क्या नाम है ?"

"शक्ल कैसी है ?"

"बच्चा जी, बताते हो या अपना गला दबवाओगे ?"

हमें श्रीनगर से चले हुए सात दिन हो चुके थे और अब हम इस दरियाई जीवन से बहुत मानूस हो चुके थे। दिन रात खाना पकाने और खाना खाने के सिवा और क्या काम हो सकता था। हाँ, कभी-कभी ब्रिज खेलते और कभी कैरम। डोंगा अपनी धीमी चाल से जेहलम की सतह पर बहता जा रहा था। महमूद अक्सर दूरबीन से उन दूर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी सिलसिलों की तरफ़ देखता रहता जिनकी चोटियाँ गर्मियों में भी वर्फ़ से ढकी दिखाई देती हैं। गुरुबख़्श हारमोनियम के पर्दे पर हाथ रक्खे अपने गले से सुरीली तानें निकालता और भैया लाल अपने दुबले पतले शरीर और लम्बे क़द के साथ बार-बार डोंगे की छत को हाथ लगाकर हम छोटे क़द वालों की हँसी उड़ाकर अपनी शारीरिक दुर्बलता पर पर्दा डालने का असफल प्रयास करता.........और ज़ेनी ? लेकिन ज़ेनी के तो हम पुजारी थे। यद्यपि मैं अपना अधिकार सब से बढ़कर समझता था और यह बात मैंने अपने साथियों पर अच्छी तरह प्रकट कर दी थी, परन्तु शीघ्र ही सब को मालूम हो गया कि यह चिड़िया किसी के जाल में फँसने वाली नहीं है। उसकी अदायें चित्ताकर्षक थीं, उसके गीत लुभावने, उसकी मुस्कराहट मनमोहिनी। परन्तु उसे अपने से प्रेम था, उसे अपने पति पर गर्व था, जो सोपुर में रोज़गार की तलाश में गया हुआ था। जब वह

चप्पू चलाते-चलाते एकाएक हँस पड़ती तो यह हँसी हम में से किसी के लिये न होती। अज़ीज़ा के लिये भी नहीं, जो उसे इतना प्यारा था। फिर कभी चप्पू हाथ से छोड़कर वह सीधी खड़ी होकर अंगड़ाई लेती और पश्चिम दिशा में देखने लग जाती, जिधर सोपुर था। उस समय गुरुबख़्श एक बेसुरे लहजे में चिल्ला उठता—"दिलदार कन्दाँ वाले दा... दिलदार!"

भैया लाल ने तो पहले दिन ही ज़ेनी को देखते ही कह दिया था—यद्यपि मैं सूरत-शक्ल से तो ठेठ मजनूँ हूँ लेकिन मुझे पता है कि यह लैला मुझसे मानूस नहीं होगी। और यह लैला ही क्या, दुनिया की किसी भी लैला को मेरी चाह नहीं हो सकती, इसलिये—ऐ मेरी पहाड़ी लैला! गुडबाई।

लेकिन भैया लाल का ही क्या हरएक का यही हाल था। शुरू-शुरू में गुरुबख़्श ने जेनी को एक दो दिन सुरीले प्रेम-गीत सुनाये थे और किचन में बैठकर मछलियाँ भूनते-भूनते उसे मछलियों की एक प्लेट भी पेश की थी। और कभी-कभी इन्द्र और मित्तल फलों के टोकरों में से सेब और नाशपातियाँ चुराकर उसे दे दिया करते थे। और हाँ, कभी-कभी केक के टुकड़े भी। लेकिन अब कुछ दिन से यह उदारता बन्द कर दी गई थी और अब सब लोग जेनी को लग-भग भूल से गये थे। अब वे दिन-रात खाना पकाने, गाने-बजाने, जेहलम में तैरने और इसी तरह के कामों में लगे रहते थे। हर एक चेहरा ताज़ा और प्रसन्न दिखाई देता था और इस सात दिन के थोड़े समय में ही हर एक को यह लगने लगा था कि उसका वज़न पहले से दुगना हो गया है।

भैया लाल ने अपनी पतली कमर को देखते हुए कहा—"अरे यार! मैं तो सचमुच मोटा हो रहा हूँ, अब यह पतलून मुझे कमर के गिर्द तंग मालूम होती है।"

इन्द्र ने अपने पिचके हुए गालों पर हाथ फेरकर कहा—"मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि अब मेरे गाल पहले जैसे पिचके हुए नहीं रहे।"

मित्तल बोला—"अब मैं आइने में अपना चेहरा देखता हूँ तो मुझे अपने चेहरे पर सुर्ख़ी की झलक दिखाई देती है।"

महमूद, जो समाजवादी था, व्यंगमय स्वर में बोला—"हाँ, क्रान्ति निकट आ रही है।"

क्रान्ति तो ख़ैर दूर की बात थी, लेकिन इसमें शक न था कि सोपुर अवश्य निकट आ रहा था। कल वुलर और परसों सोपुर, और फिर शायद ज़ेनी की ये शोख़ अदायें हमें आयु-पर्यन्त प्राप्त न हो सकेंगी। मैं किचन के द्वार पर खड़ा होकर ज़ेनी की तरफ़ देखने लगा, जो डोंगे के किनारे पर बैठी हुई चप्पू से बोट का रुख़ ठीक कर रही थी। डोंगे के दूसरे सिरे पर कहीं अज़ीजा पसीने में तरबतर डांड चला रहा होगा। मैंने दिल में सोचा—बेचारा ग़रीब ग्यारह साल का लड़का! लेकिन पेट के लिये सब कुछ करना पड़ता है। किचन के पीछे जो कमरा था, वहाँ महमूद सोया पड़ा था और उसके हलके-हलके ख़र्राटों की आवाज़ मेरे कानों में पहुँच रही थी। कभी-कभी ड्राइंगरूम से एक हँसी की बुलन्द चीख़ सुनाई देती। इन्द्र ने ब्रिज खेलते समय 'सफ़ाई' से काम लिया होगा।

ज़ेनी ने कहा - साहब, कल हम वुलर पहुँच जायँगे।"

"क्या वुलर झील बहुत सुन्दर है?"

ज़ेनी सर हिलाते हुए बोली—जी साहब, जिधर नज़र उठाओ पानी ही पानी, तेरह-चौदह मील तक, चारों तरफ़ नीला पानी और बीच में कहीं-कहीं कँवल के लाखों फूल खिले हुए और श्री वटनाग......।"

"श्री वटनाग क्या?"

"वटनाग वुलर का देवता है, वुलर का बादशाह है, वहाँ हरएक यात्री को, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, या अंगरेज़, कुछ भेंट देनी पड़ती है।"

"और यदि वह न दे तो?"

"तो उसकी नाव डूब जाती है।"

'अच्छा ...तो क्या वुलर झील बहुत सुन्दर होगी ?"

"साहब ख़ुद देख लेंगे।"

"तुमसे भी अधिक सुन्दर ?" मैंने जेनी के समीप जाकर कहा।

जेनी का चेहरा, जो पहले एक सेब के फूल की तरह था, अब एक गुलाब का फूल बन गया। उसने शर्माकर अपना मुँह मोड़ लिया।

मैंने अपनी जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकाला और जेनी के हाथ में दे दिया और भावावेश में कहा—"यह लो, इसे श्री बटनाग की नज़र कर देना।"

जेनी कुछ क्षण चुप रही, फिर एक दम चप्पू छोड़ कर, तन कर खड़ी हो गई। उसने मेरी तरफ़ तेज़ निगाहों से देखा। गुलाब का एक फूल शोला बन गया था। उसने अपने हाथ में काँपते हुए नोट को ज़ोर से अपनी मुट्ठी में मसल डाला और फिर उसे तेज़ी से पानी में फेंक दिया। ज़ेनी के होंठ काँप रहे थे, उसकी आँखें नम हो गई थीं और बालों की एक लट दाहिने गाल पर उतर आई थी।

यह जेनी की दूसरी तस्वीर है जो आज तक मेरे अन्तर में सुरक्षित है। मैं आज भी आँखें बन्द किये कल्पना की आँखों से उसे एक तेज़ शोले की तरह भड़क उठते देख सकता हूँ।

मैं देर तक किचन के द्वार के निकट खड़ा रहा। लज्जित और परेशान। अपनी हार का सजीव चित्र। नोट चक्कर काटता हुआ पानी की सतह पर बह रहा था। आख़िर उसे एक मछली ने निगल लिया। धीरे-धीरे आकाश के पश्चिमी भाग में संध्या की लाल लहरें ग़ायब हो गईं और रात की काली चादर पर तारों की बुन्दकियाँ चमकने लगीं। उन तारों की व्यङ्ग-पूर्ण हँसी जैसे मुझसे बार बार-कह रही थी—क्यों, क्या तुम जेनी को भी एक मछली समझते थे—वह मछली जो तुम्हारे पांच रुपये के नोट को एक बड़ी नेमत समझकर चुपचाप

निगल जाती। लेकिन वह पानी की मछली नहीं, आदम की औलाद है, उसे अपने भले-बुरे की पहचान है। वह ग़रीब है तो क्या हुआ, वह तुम्हारे रुपयों की मोहताज नहीं, तुम उसे नहीं ख़रीद सकते!

दूसरे दिन हम वुलर के किनारे पहुँच गये और हमने डोंगे को वहाँ बँधवाया, जहाँ जेहलम नदी वुलर झील में प्रविष्ट होती है ... जहाँ तक निगाह जाती थी, समुद्र की तरह नीला पानी फैला हुआ था और दूर, बहुत दूर, चारों ओर एक पहाड़ी शृंखला एक नीली दीवार की तरह दिखाई दे रही थी। मुर्ग़ाबियों के झुण्ड के झुण्ड झील के ऊपर उड़ रहे थे। चार-पाँच नावें झील की सतह पर बच्चों की नाव की तरह कमज़ोर और बेकस-सी नज़र आ रही थीं। हवा रुकी हुई थी, नहीं तो यदि हवा ज़ोर की चल रही होती, तो इस झील में बीस-बीस फिट की लहरों का पैदा होना मुश्किल न था। और फिर पानी की इन दीवारों के आगे किश्तियाँ कहाँ सुरक्षित रह सकती थीं।

यद्यपि हम सारा दिन एक नाव में बैठकर झील में घूमते रहे, परन्तु हवा बिलकुल न चली और झील की सतह नीले रंग के शीशे की तरह बिलकुल स्वच्छ और निश्चेष्ट रही। हमने श्री बटनाग देखा। यह एक बहुत बड़ा भँवर था, झील की पच्छिमी दिशा में एक गोल दायरा बनाता हुआ घूम रहा था और बहुत भयानक था। लेकिन हमने किश्ती के मल्लाहों के बहुत कहने पर भी वुलर के इस बेताज बादशाह को एक पैसा तक भेंट देना पसन्द न किया। और फिर हमने श्री बटनाग का एक वज़ीर भी देखा जो एक छोटा-सा भँवर था और पहले भँवर से लगभग चार-पाँच मील की दूरी पर था। हाँ, यहां गुरबख़्श ने, जो तैरना कम जानता था, एक दो नाशपातियां वज़ीर की नज़र कीं, जो न जाने कितने दिनों से भूखा था। क्योंकि मल्लाहों के कहने पर हमें ज्ञात हुआ कि पिछली दुर्घटना दो महीने पहले तीन अंग्रेज़ों को पेश आई थी। वे इस झील में नाव चलाते-चलाते उन तूफ़ानी लहरों

का शिकार हो गये थे, जो सहसा एक तेज़ झक्कड़ के चलने से पैदा हो गई थीं।

तीसरे पहर के बाद जब हम झील की सैर से लौटे तो ज़ेनी और अज़ीज़ा दोनों को फूट-फूटकर रोते हुए पाया। पूछने पर पता चला कि ज़ेनी का पति सोपुर से पंजाब चला गया है, रोज़गार की तलाश में। एक आदमी सोपुर से आया था, वह उधर से गुज़र रहा था और उससे पूछने पर उन्हें यह सब हाल मालूम हुआ था। हमने ज़ेनी और अज़ीज़ा को जहां तक हो सका, तसल्ली देने की कोशिश की। लेकिन उनके आंसू थमने में ही न आते थे। वह अपने आपको बिलकुल बेबस और असहाय पाते थे और बच्चों की तरह रोये जा रहे थे।

बड़ी देर तक मन उदास रहा। ये लोग कितने मूर्ख हैं? रोने से क्या होता है? और फिर क्या उस मूढ़ कश्मीरी को उसके अपने देश में कोई काम नहीं मिल सकता था? पंजाब में उसे क्या कुबेर का ख़ज़ाना मिल जायगा? गधे, बेवक़ूफ़, ग़रीब! इनमें अक़्ल तो बिलकुल होती ही नहीं। बस बोझ उठाना जानते हैं, ख़च्चरों की तरह। इन्हें इन्सान समझना ही बेवक़ूफ़ी है। इनके साथ ख़च्चरों का सा ही सलूक करना चाहिये। ग़रीब लोग ग़रीब ही रहें तो ठीक तरह काम करते हैं। अगर उन्हें पेट भरकर खाना मिले तो अकड़ जाते हैं।...... तात्पर्य यह कि मन बहुत परेशान रहा। हम सब लोग अपने आपको दोषी समझ रहे थे और यह ख़याल सदा कष्टप्रद होता है। आख़िर खाना खाने के बाद भैया लाल के चुटकुलों से तबियत कुछ-कुछ बहली। गुरुबख़्श ने ग्रमोफ़ोन पर कुछ सुन्दर रिकार्ड सुनाये और हमारी महफ़िल फिर ठट्ठों से गूँज उठी।

(३)

दस बजे के लगभग जब ब्रिज शुरू हुआ तो मैं सर-दर्द का बहाना करके उठ आया। वास्तव में मैं ब्रिज खेलना नहीं चाहता था। पहले मैं

सोने के कमरे में गया, फिर मैंने किचन में जाकर एक गिलास पानी पिया, लेकिन तबियत में बेकली अब भी मौजूद थी। मैं किचन से होता हुआ बाहर डोंगे के खुले फ़र्श पर आ गया।

ज़ेनी हाथ में चप्पू लिये हुए झील के नीले पानी की तरफ़ देख रही थी। वह डोंगे के किनारे बैठी थी और उसके पैरों के पास अज़ीज़ा लेटा हुआ था। नहीं, वह रो-रोकर सो गया था। उसकी पलकों पर आँसू अभी तक चमक रहे थे। उसके होंटों से अब भी कभी-कभी कोई सीने में दबी हुई सिसकी निकल जाती थी।

और ज़ेनी ?......वह क्या सोच रही थी ?...... क्या उसकी दृष्टि झील के फैलाव से परे पंजाब के मैदानों तक पहुँच रही थी, जहाँ, उस क्रूर परदेश में शायद किसी लकड़ी और कोयले की दूकान के आगे उसका पति लेटा हुआ था, दिन भर की मेहनत से चूर—एक थके हुए खच्चर की तरह हाँप रहा था। ज़ेनी का चेहरा उदास था। उसकी आँखें जैसे शून्य में कुछ देख रही हों।

"ज़ेनी !" मैंने धीरे से कहा।

वह ख़ामोश बैठी रही।

"मुझे बहुत अफ़सोस है ज़ेनी !"

ज़ेनी का सीना ज़ोर से हरकत करने लगा।

"ज़ेनी तुम घबराओ नहीं।" मैंने धीरे से कहा।

"साहब, अब हम क्या करेंगे ?" ज़ेनी ने रुँधे हुए लहजे में कहा—"अब हमारा इस दुनिया में कोई नहीं...एक शौहर था, वह परदेश चला गया।"

"अज़ीज़ा छोटा सा बच्चा है.....।"

"मैं औरत ज़ात हूँ ...।"

"हाय, अब क्या होगा ?"

ज़ेनी की सिसकियाँ तेज़ होती गईं, मैं उसके निकट जा खड़ा हुआ और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—"क्यों घबराती

हो ज़ेनी ! तुम्हारा आदमी परदेस से अवश्य वापस आ जायगा। और ....."

ज़ेनी ने रोते हुए कहा—साहब, मैं मर जाऊँगी और छोटा अज़ीज़ा भी भूखों मर जायगा। हाय, उसने हमें धोखा दिया है!"

"मत घबराओ ज़ेनी! मैं तुम्हारे लिये मेरा मतलब है, मैं तुम्हारी हर तरह मदद करने को तैयार हूँ। हाँ, तुम रोती क्यों हो? मेरी अच्छी ज़ेनी! मुझे तुमसे अथाह प्रेम है, असीम प्रेम। मैं तुम्हारे लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ......।"

यह कहते हुए मैंने उसके हाथ में पाँच रुपये का एक नोट थमा दिया। जैसे दीपक के बुझने से पहले लौ की एक ऊँची लपक पैदा होती है, इसी तरह ज़ेनी की आँखों में वही पुरानी चमक पैदा हुई। लेकिन फिर तुरन्त बुझ गई। तेल समाप्त हो चुका था। और फिर ग़रीबों के पास पूँजी होती ही कहाँ है। जेनी एक टूटी हुई बेल की तरह मेरी गोद में गिर पड़ी और उसने अपने आँसुओं से तर चेहरे को मेरे बाज़ुओं में छिपा लिया......वह ज़ोर-ज़ोर से हिचकियाँ लेने लगी।

चांद का रंग फीका पड़ गया था। सितारे शर्मिन्दा थे। वे जेहलम की सतह पर बासी फूलों की तरह दिखाई दे रहे थे। हवा कँवल के पत्तों के पास से गुज़रती हुई आहें भर रही थी। सृष्टि का प्रत्येक कण सर झुकाकर उदास लहजे में कह रहा था—तुमने हमें ख़रीद लिया!

केवल ड्राइंग रूम से गुरुबख़्श के गाने की ऊँची आवाज़ सुनाई दे रही थी। वह झूम-झूम कर गा रहा था—

अगर फ़िरदौस बर रूए ज़मीं अस्त,
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त।
(यदि धरती पर स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है।)

: ५ :

करमचन्द और करमदाद

यह मीरपुर का ज़िक्र है। मीरपुर से बीस कोस के फ़ासले पर मौलवी साहब का कोटला है; उसे मौलवी साहब का कोटला इसलिए कहते हैं, कि यहाँ पर एक बहुत पुराना कुआँ है जो गर्मियों के दिनों में भी नहीं सूखता। जब तेज़ लू चलती है और आसपास के देहातों के सारे कुएँ सूख जाते हैं तो गहरे भूरे रंग की तपती हुई पगडण्डियों पर गहरे गंदुमी रंग की औरतें नीली क़मीज़ें और काली शलवारें पहिने हुए घड़े उठाए इसी कुएँ का रुख़ करती हैं। यह कुआँ बहुत समय बीता एक ईश्वर-भक्त मौलवी ने बनवाया था जो जेहलम के उस पार से से आया था। कुआँ बहुत गहरा है और उसका पानी बहुत मीठा है, दूसरे कुओं की तरह खारी नहीं है। इसलिए यहाँ पर औरतों की भीड़ लगी रहती है, जो दूर-दूर के देहातों से चलकर मीठा पानी लेने के लिए आती हैं।

मौलवी साहब के कोटले में इस कुएँ के सिवा और कोई चीज़ मीठी नहीं है। जाड़े में कड़ाके की सर्दी पड़ती है और गर्मियों में तेज़ लू चलती है। खेतों में निखद बाजरे के सिवा और कुछ पैदा नहीं होता।। देहाती बड़ी कड़वी बोली में बात करते हैं और सदा फटे-पुराने कपड़े पहिने रहते हैं। गर्मियों में इसलिए नहीं नहाते कि पानी

नहीं मिलता और सर्दियों में इसलिए नहीं नहाते कि पानी मिलता है लेकिन बर्फ़ से ज़्यादा ठंडा होता है। कोटले के चारों तरफ़ लुंड-मुण्ड नंगी पहाड़ियाँ हैं जिन पर भीकड़ की झाड़ियों के सिवा कुछ नहीं उगता। इन्हीं झाड़ियों से लोग ईंधन का काम लेते हैं। इसके फूलों से शहद निकालते हैं और इसकी जड़ों को कूट कर बुख़ार, खांसी, दमा, तपेदिक़, नमोनिया, जुलाब, नासूर, गँठिया और दूसरे तमाम रोगों के लिए इस्तेमाल करते हैं और प्रायः अच्छे हो जाते हैं। इन लोगों की तन्दुरुस्ती इतनी अच्छी है कि ये लोग दूर-दूर डकैती और चोरी के लिए जाते हैं। कोटले में हर औरत जो ब्याही जाती है, भगाकर लाई जाती है। कोटला और आस-पास के देहात का कोई घर ऐसा नहीं है जिसका कोई आदमी जेल न जा चुका हो या फाँसी की सज़ा न पा चुका हो। हर घर में एक राइफ़ल अवश्य मौजूद होगी, क्योंकि हर घर का जवान बेटा फ़ौज में भर्ती हो जाता है। मौलवी साहब के कोटले में कोई मौलवी नहीं रहता।

बहुत दिनों की बात है। इसी मौलवी साहब के कोटले के दो युवक रोज़गार की तलाश में घर से निकले। एक का नाम था करमचन्द, दूसरे का नाम था करमदाद। दोनों बड़े तगड़े जवान थे और सूरत-शकल से एक दूसरे के भाई मालूम होते थे, यद्यपि उनमें कोई ख़ानदानी रिश्ता न था। उन दोनों नौजवानों को घरों से तीन-तीन रोटियाँ मिलीं और पिसा हुआ नमक और एक-एक प्याज़ की बड़ी गाँठ। लाठियाँ लेकर और रोटियाँ पोटली में बांधकर करमचन्द और करमदाद अपने-अपने घर से निकले और मौलवी साहब के कुएँ पर मिल गये।

थम्ब गाँव के नम्बरदार की बेटी, जो कुएँ पर पानी भरने के लिये आई थी, उन दोनों को देखकर हँसी और लाल छींट के दुपट्टे की ओट से हँसती रही। करमचन्द उसके कुँआरे सीने के उतार-चढ़ाव को बड़ी हसरत से देखता रहा; फिर हिम्मत करके बड़ी नम्रता से बोला—

"ए थम्ब के नम्बरदार के घर की चाँदनी, तेरी माँ को काला भैंसा ले जाय। फ़क़ीर परदेश जाते हैं, एक घूँट पानी पिला दे अपने कुएँ का!"

करमदाद ने करमचन्द के सिर पर धप जमाकर कहा—"ए वे गाली बकता है। नमक-चोर के तुख़्मे-बेपीर।" फिर करमदाद ने अपनी पगड़ी के तुर्रे को बराबर किया और शोख़ निगाहों से थम्ब के नम्बरदार की सुन्दर बेटी को देखकर बोला—"देश-निकाला मिला है। बोल, चाँदी की मूरती। अपने मक्खन ऐसे सुन्दर हाथों से घड़े को झुका के पानी पिला दे। करमदाद तुझ पर मौलवी साहब का सारा कोटला वार देगा—"सिवाय अपने माँ-बाप, बहन-भाइयों के, और सिवाय इस नमक-चोर के तुख़्मे-बेपीर करमचन्द के।"

थम्ब के नम्बरदार की बेटी हँसते-हँसते दोहरी हो गई। करमचन्द बड़ी हसरत से नीली सूसी की क़मीज़ पर उभरती और गिरती हुई हँसी की लहरों को देखता रहा। नम्बरदार की बेटी ने अपना घड़ा झुका दिया। करमचन्द और करमदाद दोनों ने अपने चुल्लू बढ़ाये। नम्बरदार की बेटी ने इस तरह अपना घड़ा छलका दिया कि दोनों चुल्लू भरते गये और वे दोनों पीते गये और काँच की चूड़ियों के छनाके सुनते गये और लाल गालों पर गिरी हुई पलकों को देखते गये, यहाँ तक कि लाल गालों पर नन्हीं-नन्हीं शबनमी बूँदें उभर आईं और फिर घड़े का पानी समाप्त हो गया और पीछे से आकर उनके गाँव की एक लड़की हुस्ना ने उन्हें धप जमाई और कहा—"मरदूदो, अब जाओ भी, बहुत परेशान कर लिया तुमने हमको।"

करमचन्द और करमदाद दोनों धीरे-धीरे उठे, अपनी लाठियाँ सँभालीं, जगत पर खड़ी लड़कियों को सलाम किया, अपने गाँव को, उसके आस-पास के पहाड़ों को सलाम किया, और मुँह मोड़कर मीरपुर के रास्ते पर हो लिये। लड़कियों की आँखों में आँसू थे। वे हौले-हौले गाने लगीं—

"दुर चलियां परदेश !
राँझना ! राँझना !!"

कच्चे रस्ते के मोड़ तक वे दोनों राँझना-राँझना के गीत को अपने साथ चलता हुआ महसूस करते रहे। मोड़ पर एकदम वह गीत रुक गया। उन्होंने घूमकर देखा। वह गाँव, वह कुआँ, वे पहाड़ियाँ, वे टीले, जिन पर वे चाँदनी रातों में खेला करते थे, बचपन में आँखमिचौनी, जवानी में कबड्डी, वे सब नज़रों से ओझल हो चुके थे। मोड़ मुड़ते ही जैसे हर पुरानी चीज़, हर जानी-पहचानी प्यारी चीज़ उनसे कट कर अलग हो गई और अब वे एक नये रस्ते पर, एक नये शहर को, एक नये देश में, एक नया रोज़गार ढूँढने, जा रहे थे।

करमचन्द और करमदाद ने अपने ऊँचे रास्ते से नीचे की फैलती हुई, गिरती हुई, पहाड़ियों की श्रृङ्खला को देखा जिनके अन्त में जेहलम का किनारा एक चाँदी की गोट की तरह चमक रहा था। करमदाद ने कहा—"दिन ढलने के पहले हम मीरपुर पहुँच जाएँगे।" करमचन्द ने कहा—"जल्दी चलो। रुकने से मेरे पाँव बार-बार लौट जाने को कहते है।"

करमदाद मुस्कराया। बड़े मीठे, भावुक लहजे में बोला—थम्ब के नम्बरदार की बेटी की याद तो नहीं आ रही ? लेफ़्टेन बहादुर खाँ कहता था—'मैं देश-देश घूमा हूँ। समुन्दर पार सात विलायत भी देख आया हूँ। ईमान से अपने गाँव ऐसी ख़ूबसूरत लड़कियाँ कहीं नहीं देखीं।"

करमचन्द ने जल्दी से कहा—"आगे बढ़ो, नहीं तो मुझे तुम्हें उठाकर ले चलना पड़ेगा।"

"देखें कौन तेज़ चलता है।" करमदाद ने चुनौती दी। दोनों तेज़-तेज़ क़दमों से चलने लगे। साथ-साथ, बराबर-बराबर। जहाँ चौड़ा और समतल रास्ता होता वहाँ दोनों साथ-साथ रहते। जहाँ ढलाई या चढ़ाई आ जाती, वहाँ कभी एक आगे हो जाता कभी दूसरा। कभी

एक गीत गाने लगता, कभी दूसरा। इसी तरह चलते-चलते एक दूसरे से मुक़ाबला करते हुए, एक दूसरे को गीत सुनाते हुए वे बहुत-सा रस्ता तय कर गये। सुबह से दोपहर हो गई और दोपहर भी जाने लगी तो वे बेरियों वाली ढेकी के नीचे पहुँच गये। यहाँ सलेटी रंग की बड़ी-बड़ी चट्टानें थीं जिनके दामन में एक साफ़-सुथरा ठण्डा चश्मा था। चट्टानों के ऊपर बेरी का एक बहुत बड़ा झाड़ फैला हुआ था और चट्टानों की छाया और झाड़ की छाया के कारण यह जगह मुसाफ़िरों को सुखप्रद और ठंडी मालूम होती थी।

वे दोनों चश्मे के किनारे लेट गये और पशुओं की तरह पानी पीने लगे। पानी पी के उठ बैठे और पुटलियाँ खोल के खाना खाने लगे। बीच-बीच में जब मुँह की राल भी बाजरे की रोटी को गले से उतारने में असफल रहती तो बढ़कर चश्मे से एक घूँट पानी का पी लेते और फिर खाना खाने में व्यस्त हो जाते।

करमदाद ने पूछा—"तुम मीरपुर जाकर क्या करोगे, क्या विचार है?"

करमचन्द ने कहा—"वही करूँगा जो मेरा बाप करता आया है। अर्थात् नमक का व्यापार।"

करमदाद ने कहा—"नमक-चोर के तुख़्मे-बेपीर, व्यापार के लिये तुम्हारे पास पैसा कहाँ है?"

करमचन्द ने कहा—"हाँ, पैसा तो नहीं है। सोच रहा हूँ, किसी आढ़त की दुकान पर नौकरी कर लूँगा, फिर धीरे-धीरे कुछ हो जायगा। और तुम क्या करोगे?"

करमदाद ने कहा—"क्या करूँ, आज-कल भर्ती बन्द है नहीं तो सब कुछ हो जाता। अच्छा, मीरपुर तो आने दो। अल्लाह ख़ुद रास्ता निकालेगा।"

करमचन्द ने कहा—"तुम भी मेरे साथ आढ़त की दुकान पर नौकर हो जाना।"

करमदाद ने कहा—"नहीं, यह झिक-झिक मुझसे नहीं होगी। यह बाज़ारों, गलियों, छोटी-मोटी दुकानों, तंग जगहों की नौकरी मुझसे नहीं होगी। करमचन्द, मैं तो कोई खुला काम चाहता हूँ, जिसमें खूब हाथ-पाँव फैला सकूँ। क्या करें, अपने देश में अनाज ही नहीं होता, नहीं तो मैं खेती-बाड़ी करता, इधर आने की ज़रूरत ही क्या थी?"

खाना खाकर वे दोनों एक पलक झपकाने के लिये सो गये और ऐसे सोये कि जब उठे तो सूरज बड़ी तेज़ी से पश्चिम की तरफ़ जा रहा था। दोनों एक दूसरे को गालियाँ देते हुए उठे और गालियाँ देते, हँसते, गाते, एक दूसरे से तेज़ चलने बल्कि अब तो दौड़ने का मुक़ाबला करते हुए वहाँ से चले। अब उनका मुक़ाबला आपस का न था बल्कि ढलते हुए सूरज से था। कोई दो मील तक वे दोनों दौड़ते हुए गये, फिर थोड़ा सा दम लेकर आगे बढ़े और फिर दौड़ना शुरू कर दिया। जब दौड़ने से थक गये तो तेज़-तेज़ चलते गये। मुंह बन्द किये, पसीने में तर-बतर, वे मीरपुर की तरफ़ चलते गये। और जब सूरज पश्चिम में पहुँच गया तो वे मीरपुर से चार कोस के फ़ासले पर छोटी मसजिद के निकट पहुँच गये। छोटी मसजिद के तालाब में मसजिद के मीनार और गुम्बद तैर रहे थे और उनके पीछे सूरज की रोशनी गुम हो रही थी। शाम की ठंडी हवा चलने लगी थी और कच्चे तालाब के किनारे बेरियों के झाड़ में वापस आती हुई चिड़ियों ने शोर मचाना शुरू कर दिया था। तालाब के सामने के घर से धुआँ उठना शुरू हो गया था और एक बच्चा अपने तुतलाते हुए लहजे में अपनी अच्छी अम्मी से रोटी माँग रहा था। एक लड़की तालाब पर पानी पीने आई और वे दोनों उसे देखकर ठिठक गये। उसके उलझे-उलझे बालों में डूबते हुए सूरज की किरनें झिलमिला रही थीं और उसकी बड़ी-बड़ी निर्मल आँखों में एक जादूभरी रोशनी, ठंडी-ठंडी रोशनी सी, महसूस होती थी। वे दोनों उसे देखकर ठिठक

गये। उनके अपने गाँव में भी कोई लड़की इतनी सुन्दर न थी।

करमदाद पहले बोला—"तेरा बाप ज़िन्दा है न ?"

लड़की ने बड़े आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखते हुए कहा—"हाँ।"

"तेरी माँ ?"

"हाँ।"

"तेरा घर सामने है न ?"

"हाँ।"

"तेरे घर में लस्सी है ?"

"हाँ, मगर तुम......?"

"बस ज़्यादा कुछ न कह हमसे। हमें अपने घर ले चल।" करमदाद ने उसे टोककर कहा—"हम तेरे घर चलकर तेरे हाथ से लस्सी पियेंगे। और बस, फिर फ़क़ीर चले जायँगे। जल्दी कर, मंज़िल खोटी हो रही है।"

लड़की के घर जाकर उन दोनों ने पेट भर कर लस्सी पी। छोटा लड़का, जो अम्मी से रोटी का टुकड़ा माँग रहा था, करमदाद की गोद में आ बैठा। करमदाद ने उसे रोटी का टुकड़ा दिया और उससे पूछा—"तेरा नाम क्या है ?"

"अल्लादाद।"

"तेरे बाप का नाम ?"

"मुराद।"

"वह तेरी अम्मी है ?"

"हाँ।"

"वह तेरी बहन है ?"

"हाँ।"

"तेरी बहन का क्या नाम है ?"

"बाखी।"

"बाली से कह, हमारे घर आज एक मेहमान आया है। आज रात को खाना खाकर मीरपुर जायगा।"

अल्लादाद की अम्मी ने पूछा—"कहाँ से आये हो ज्वान ?"

"मौलवी साहब के कोटले से।"

"कहाँ जा रहे हो ?"

करमदाद ने कहा—"मैं तो यहीं रह रहा हूँ। मेरा दोस्त मीरपुर जा रहा है।"

[२]

करमचन्द ने बहुत समझाया, परन्तु करमदाद नहीं माना। लाचार करमचन्द अकेला मीरपुर चला गया। वहाँ जाकर उसने आढ़त की एक दूकान पर नौकरी कर ली। वह आढ़ती के मुनीम के घर का सारा काम करता था और आढ़त की दूकान पर सारा सामान भी ढोता था, और जब उसे फ़ुरसत होती तो मुँडी पढ़ने बैठ जाता। बिना मुँडी पढ़े वह आढ़त का काम कैसे जान सकता था ? इसी दिन-रात की मेहनत में उसने तीन साल खिला दिये। अब वह बड़े मुनीम का छोटा मुनीम हो गया था और छोटे-मोटे क़िस्म के चार-सौ-बीस ख़ुद भी करने लगा था। अब वह हर रोज़ नहाता और रेशमी बनियान, मलमल का कुरता और लट्ठे का पाजामा पहनता। उसका बदन अब पहले की तरह खुरदुरा न था, हर रोज़ मुलायम होता जा रहा था। इन दो बरसों में एक बार भी वह अपने दोस्त करमदाद से मिलने न जा सका। न करमदाद उससे मिलने आया। दो साल के बाद एक दिन ऐसा हुआ कि उसे आढ़त के सिलसिले में छोटी मसजिद के गाँव में जाना पड़ा। जाना असल में बड़े मुनीम को था, परन्तु चूँकि उस काम में कोई बहुत अधिक लाभ की आशा न थी, इसलिये बड़े मुनीम ने करमचन्द को भेज दिया।

करमचन्द बहुत सवेरे ही छोटी मसजिद के तालाब पर पहुँच गया। तालाब के सामने घर था और घर के द्वार का प्रतिबिम्ब पानी में पड़ता था। करमचन्द ने देखा कि तालाब की सतह पर एक द्वार खुला और

उसमें से एक लड़की घड़ा लिये प्रकट हुई और द्वार पर एक क्षण के लिये रुकी। दूसरे क्षण में एक और आदमी पीछे से आया। उसके कन्धे पर हल था। दोनों की निगाहें एक क्षण के लिये मिलीं। और फिर तत्क्षण पीछे से दो बैल आये और उनके पीछे एक अधेड़ आयु का व्यक्ति और एक जवान व्यक्ति जो करमदाद था। वह अधेड़ आयु के आदमी के साथ खेतों में चला गया और लड़की घड़ा उठाये आप ही आप मुस्कराती तालाब के किनारे-किनारे हौले-हौले एक अजीब चाल से चलती हुई करमचन्द के निकट आ गई—जैसे उसके शरीर के हर कण में प्रेम की लहरें मचल रही हों और किनारे से टकराने के लिये बेताब हों।

करमचन्द ने पूछा—"करमदाद कहाँ है ?"

लड़की पानी भरते-भरते एकाएक ठिठक गई। फिर उसने करमचन्द को पहिचान लिया। बोली--"खेतों में गया है।"

"तुम्हारे यहाँ काम करता है ?"

"हाँ।" लड़की ने खुशी से सिर हिलाया।

"क्या तन्ख़्वाह मिलती है उसे ?"

"रोटी का टुकड़ा मिलता है। और क्या मिलेगा उसे ?"

"तुम्हारी उससे शादी नहीं हुई ?"

लड़की ने सिर झुका लिया। कुछ नहीं बोली।

"क्यों नहीं हुई ?"

वह धीरे-धीरे बोली—"अब्बा नहीं मानते।" फिर उसने धीरे से घड़ा उठाया और मुँह फेरकर कहने लगी—"घर आकर लस्सी पी जाओ। करमदाद तुम्हें बहुत याद करता है।"

करमचन्द ने धीरे से कहा—"नहीं बाली, मैं इस समय नहीं आऊँगा। तुम करमदाद से कह देना कि उसका दोस्त दौलतराम लक्ष्मीचन्द महाजन के यहाँ छोटा मुनीम है। उसकी हालत बहुत अच्छी है। वह अपने दोस्त करमदाद को बहुत याद करता है। यदि वह

करमचन्द के पास आ जाय तो उसे कोई तकलीफ़ न रहेगी।"

"मैं कह दूँगी।"

बाली चली गई। करमचन्द देर तक उसके सुन्दर शरीर को देखता रहा। जब वह चली गई, दृष्टि से ओझल हो गई, तब भी वह बहुत देर तक उसके सुन्दर शरीर को देखता रहा।

तीन साल और बीत गये। और अब करमचन्द ने आढ़ती का इतना विश्वास प्राप्त कर लिया था कि उसने रोज़-रोज़ की शिकायतों के दबाव से बड़े मुनीम को आढ़त की दूकान से निकलवा दिया। अब वह आढ़ती का दाहिना हाथ था और उसका सारा कारोबार बड़ी खूबसूरती से संभालता जा रहा था। उसी खूबसूरती से वह अपनी आमदनी भी बढ़ाता जा रहा था, क्योंकि वह स्वयं अपनी आढ़त की दूकान खोलना चाहता था और दौलतराम लच्मीचन्द महाजन के मुक़ाबले पर मीरपुर में एक आलीशान हवेली खड़ी करना चाहता था। तीन साल और बीत गये और उसने बड़े मन्दे के खतरनाक दिनों में वह चाल चली कि दौलतराम लच्मीचन्द का सारा कारोबार चौपट हो गया और उसे दिवाला निकालना पड़ा। अब तो विवश होकर करमचन्द को अपने मालिक की दूकान से अलग होना पड़ा। उसने बाज़ार के नुक्कड़ पर, जिधर से देहात को सड़क जाती थी, एक छोटी सी दूकान खोल ली। उसमें यह लाभ था कि देहाती, जो फ़सलों का अनाज बेचने के लिये आते, सबसे पहले उसी के यहाँ आते। थोड़े दिनों में करमचन्द की दूकान चमक उठी और उसका कारोबार मीरपुर के आस-पास के गाँव में फैलने लगा और अबके छः साल के बाद उसे फिर अपने काम से छोटी मसजिद के गाँव को जाना पड़ा।

अबके वह पैदल नहीं था, एक बढ़िया खच्चर पर सवार था और उसके साथ उसका नौकर था। अब वह तालाब के किनारे अजनबियों की तरह नहीं ठहरा बल्कि सीधा तालाब के किनारे उस पार के घर की तरफ़ अपना खच्चर बढ़ा ले गया और दनदनाता हुआ आँगन के अन्दर

चला गया। चूल्हे के पास बाली की माँ रोटी पका रही थी। आँगन में बिछी हुई एक खाट पर बाली और करमदाद दोनों एक ही रकाबी में खाना खा रहे थे। मक्की की रोटी और बथुवे का साग, थोड़ा-सा मक्खन और लस्सी का छन्ना। करमचन्द उसे देखते ही उठ खड़ा हुआ और ज़ोर से बोला—"अबे नमकचोर के तुख़्मे-बेपीर।" दोनों मित्र बड़े प्रेम से गले मिले और जब करमदाद ने करमचन्द को छाती से लगा के ज़ोर से भींचा तो उसे मालूम हुआ कि करमचन्द का शरीर तो बिलकुल ही नर्म पड़ गया है, औरत के शरीर की भाँति, और उसका पेट भी थोड़ा-सा आगे को बढ़ आया है।

करमदाद ने उसका पेट बजाकर पूछा—"कितने महीने का है, ढोलकी के ?"

करमचन्द हँसने लगा। करमदाद ने उसे भी अपने साथ खाने में सम्मिलित कर लिया और वे तीनों एक ही रकाबी में खाना खाने लगे। करमचन्द को अब यह खाना सूखा-सूखा-सा लग रहा था और लस्सी के छन्ने से भी बू सी आ रही थी। उसने बाली की तरफ़ देखा और उसे महसूस हुआ कि वह सौंदर्य के उन छोटे-छोटे टुकड़ों को फिर से जोड़ रहा है जो उसने अपने जीवन में कभी यहाँ कभी वहाँ देखे थे, परन्तु कभी एक जगह न देखे थे। जैसे सुबह के झिलमिलाते हुए ठंडे तारे, जैसे ओस में भीगे हुए गुलाबी फूल, जैसे हवा में काँपते हुए आम के नये पत्ते, जैसे गहरी रात में नदी की सतह पर छनकर आने वाली धरती की सोंधी-सोंधी सुगंध, जैसे दोपहर के सन्नाटे में किसी विरह के मारे के गीत की गुम होती हुई लय। एकाएक करमचन्द को ऐसा महसूस हुआ जैसे उसके अन्दर की गन्दगी छुट रही है और नूर की एक हाँपती-काँपती-सी किरन उसके अंधेरे सीने की चट्टान को तोड़ कर अन्दर आने का जतन कर रही है। करमचन्द ने कहा—"शादी कब हुई ?"

करमदाद ने कहा—"दो साल हो गये। अब तो नन्हा भी है।"

बाली खाट से उठ गई और नन्हे को ले आई। नन्हा करमचन्द की गोद में हुमकने लगा।

करमचन्द ने कहा—"तुम लोग शहर में आकर रहो। मैं एक बहुत बड़ी हवेली बनवा रहा हूँ। सच कहता हूँ करमदाद! तुम लोग मेरे यहाँ आकर रहो। अब तुम्हें मेहनत-मज़दूरी करने की ज़रूरत नहीं। करमदाद, दिन-रात खेतों में सड़ते हो। देखो तो, बाली के पास अच्छे कपड़े भी नहीं हैं।"

करमदाद ने कहा—"मैं तो अपने खेतों के बिना मर जाऊँगा। जाने तू कैसे दिन भर उस काली दूकान में रहता होगा, नमकचोर के तुख़्मे-बेपीर, छोड़ दे यह सब खटराग, मेरे घर आ जा। यहाँ तुझे मक्खन और लस्सी खिलाऊँगा, और खेतों में काम कराऊँगा। मगर अब तू काम कैसे करेगा? पहले अपने इस बड़े पेट का बच्चा तो जन ले।"

करमदाद हँसने लगा। बाली भी हँसने लगी। करमचन्द भी झेंप कर खिसियानी हँसी हँसने लगा।

× × ×

दस साल और बीत गये। और अब करमचन्द ने शहर में एक आलीशान हवेली तामीर कराई थी और उसकी बोस्की की सफ़ेद क़मीज़ में सोने के बटन टँगे हुए थे और अब वह मीरपुर के आधे बाज़ार का मालिक था और कई गली-मुहल्लों में उसके मकान थे और राज-दरबार में उसकी बड़ी इज़्ज़त थी। अब के सरकार ने जो मीरपुर में मोटर की सड़क बनाने का फ़ैसला किया तो उसका ठेका भी करमचन्द को ही मिला। यह सड़क गटालियाँ से मीरपुर और मीरपुर से कोटली तक जाती है, और रास्ते में छोटी मसजिद को मौलवी साहब के कोटले से मिला देती है। इस ठेके से करमचन्द ने लाखों रुपया कमाया, बल्कि यों कहिये कि लाखों रुपया काटा। और वह अब जंगलों

17768

के ठेके लेने लगा और जेहलम नदी के द्वारा शहर के बड़े काठगुदाम तक लकड़ी भेजने लगा। उसने जेहलम में भी आढ़त की दूकान खोल ली। तीन मोटरें रख लीं और मीरपुर में एक गुरुद्वारा, एक मन्दिर और एक पाठशाला बनवाया। अब उसने पढ़ना-लिखना भी ख़ासा सीख लिया था और अब वह हमेशा अपने हस्ताक्षर यों किया करता था—

लाला करमचन्द आढ़ती, रईस मीरपुर

जिन दिनों मोटर-रोड मीरपुर से छोटी मसजिद तक पहुँची थी, वह एक दिन देख-भाल के लिये छोटी मसजिद गया था। उस दिन वह पैदल नहीं गया था, खच्चर पर भी सवार न था, वह अपनी मोटर में स्वयं बैठकर, उसे स्वयं चलाकर छोटी मसजिद गया था। यहाँ वह दिन भर अपने काम में इतना अधिक व्यस्त रहा, इंजीनियरों और ओवर-सियरों से सलाह-मशविरा करता रहा, मज़दूरों और ख़लासियों के झगड़े निपटाता रहा और इसी व्यस्तता में उसे करमदाद से मिलना भी याद न रहा! हालाँकि करमदाद का घर तालाब के किनारे पर ही था और तालाब के किनारे से ही मोटर-रोड गुज़रती थी और तालाब के किनारे इंजीनियरों और ओवरसियरों के तंबू लगे हुए थे। यद्यपि वह करमदाद से न मिल सका परन्तु करमदाद ने उसे दूर ही से अपने खेतों में से देख लिया था और उसे देखकर वह वहीं से चिल्ला उठा था—"अबे ढोलकी के, नमकचोर के तुख़्मे-बेपीर!" परन्तु उसकी आवाज़ करमचन्द तक न पहुँची थी और उसने उधर कोई ध्यान न दिया था। और इसके बाद भी करमदाद ने करमचन्द से मिलने की बड़ी कोशिश की, लेकिन इंजीनियर लोग और दूसरे बड़े-बड़े आदमी सेठ की मोटर को इस तरह घेरे हुए थे और वह मोटर इस तरह यहाँ से वहाँ उड़ती फिरती थी कि करमदाद बहुत कोशिश करने पर भी अपने दोस्त करमचन्द से न मिल सका और करमचन्द अपने दोस्त करमदाद से मिले बिना वापस मीरपुर चला गया और वापस मीरपुर जाकर भी

उसे ध्यान न आया कि छोटी मसजिद में करमदाद भी रहता है जिससे वह आज मिलकर नहीं आया। आज उसके जीवन में कोई अजीब बात नहीं हुई थी। लेकिन करमदाद को छोटी मसजिद में यह बात बहुत अजीब और बुरी-सी लगी और वह बहुत देर तक उसे नहीं भूल सका।

[२]

एकाएक टेलीफ़ोन की घन्टी बजते-बजते बन्द हो गई। करमचन्द ने कोशिश की—"हलो..... हलो......" ख़ामोशी। करमचन्द ने घबराकर बत्ती जलाई, परन्तु आज बत्ती भी नहीं जली। चारों ओर सन्नाटा था—ऐसा सन्नाटा जैसे अब कहीं कुछ न होगा। फिर कहीं से किसी के भागने की आवाज़ आई। कोई तेज़-तेज़ क़दमों से उसकी तरफ़ भागा-भागा आया। कहने लगा—"हमलावर आन पहुँचे! शहर पर हल्ला बोल रहे हैं।"

"कहाँ पर हैं?" करमचन्द ने घबराकर पूछा।

"वह नीचे ढेकी तक पहुँचे हैं। अभी आया चाहते हैं।"

"कितने आदमी हैं?"

"कोई दो हज़ार होंगे। अगर जान बचानी है तो भागो।"

करमचन्द पुलीस-चौकी में बैठा था। यहाँ पर ठीक-ठीक स्थिति के बारे में पूछ-ताछ करने आया था। वह इस समय केवल एक क़मीज़ और पायजामा पहने था। उसे एकाएक अपनी हरी-भरी दूकान का ख़याल आया, अपनी आलीशान हवेली का ख़याल आया, मीरपुर के मुहल्लों और बाज़ारों में फैले हुए मकानों और दूकानों का ख़याल आया, और फिर अन्त में उसे अपनी तिजोरी का ख़याल आया जिसके अन्दर सोने की ईंटें थीं। पुलीस-चौकी में केवल एक सिपाही बैठा था। करमचन्द ने उससे पूछा—"अब क्या होगा?"

सिपाही ने कहा—"अब क्या हो सकता है? हम लोग संख्या में बहुत कम हैं।"

करमचन्द पुलिस-चौकी से बाहर आया। बाहर आकर उसने देखा सब लोग भाग रहे हैं। करमचन्द भी भागा। पहले वह जेहलम जाने के लिए पच्छिम की ओर भागा, परन्तु उधर से हमलावर आ रहे थे। फिर वह कोटली जाने के लिए पूरब की ओर भागा, परन्तु कोटली भी हमलावरों के अधिकार में थी। टीले पर शहर आबाद था और नीचे खेत फैले हुए थे और सामने जली हुई पहाड़ियां थीं। करमचन्द भागता-भागता खेतों की तरफ़ निकल गया।

आधी रात के लगभग करमचन्द खेतों में से होता हुआ, सूखे नालों में से चलता हुआ, वीरानों में से गुज़रता हुआ छोटी मसजिद के तालाब के पास पहुँच गया। रास्ते में उसे दूर से गोलियों के चलने की आवाज़ें सुनाई देती रहीं, और आदमियों की चीख़ें और कराहने की आवाज़ें, और लारियों का शोर सड़क पर बढ़ता गया। और फिर मीरपुर के टीले से आग के शोले बुलन्द होते गये। और फिर सारा पच्छिमी आकाश लाल-लाल रोशनी में उबलने लगा। तालाब के किनारे बैठे हुए उसे तालाब के पानी में पच्छिमी आकाश की लाल रोशनी का अक्स नज़र आया और उसकी पृष्ठ-भूमि में मसजिद के मीनार और कंगूरे उभरते गये और करमचन्द ने सोचा कि उसका मकान जल गया है, उसकी दूकान लुट गई है, उसकी हवेली बरबाद हो गई है, उसकी तिजोरी खोल डाली गई है और अब उसके पास इन दो कपड़ों के सिवा और कुछ नहीं है जिन्हें पहनकर वह अपनी जान बचाकर भी यहां से न ले जा सकेगा।

करमचन्द धीरे से उठा और करमदाद के मकान पर दस्तक देने लगा। बहुत देर के बाद द्वार खुला। वह भी थोड़ा-सा द्वार खुला और कोई द्वार के पीछे से बोला—"कौन है ?"

करमचन्द ने आवाज़ पहचान ली। कांपते हुए धीरे से बोला—"द्वार खोलो करमदाद। मैं हूँ तुम्हारा दोस्त करमचन्द।"

करमदाद ने सारा द्वार खोल दिया और करमचन्द के गले लिपट

कर बोला—"अबे नमकचोर के बेटे, तुख़्मे-बेपीर। आख़िर आ गया न ठिकाने पर। देख बाली, कौन आया है। उठ बाली, देख कौन आया है। मेरा दोस्त करमचन्द आया है। देख, मैंने कहा था, एक दिन करमचन्द ठिकाने पर आ जायगा। वह हज़ार बार बेईमान हो जाय, वह फिर ठिकाने पर आ जायगा। वह मेरा दोस्त है।"

करमचन्द ने कहा—"धीरे बोलो, कोई मेरा नाम सुन लेगा, तो मैं जान से मार डाला जाऊँगा।"

करमदाद ने कहा—"कौन ढोलकी का तुझे मेरे जीते जी हाथ लगा सकता है। उठ बाली, रोटी पका। जल्दी से रोटी तैयार कर दे।"

बाली ने मुस्कराकर कहा—"आज मैंने एक आदमी का खाना अलग रख दिया था। मेरा दिल कहता था, आज का दिन ऐसा है कि किसी न किसी को यहाँ आना ही चाहिये।"

करमदाद ने खुश होकर बाली को छाती से लगा लिया।

बाली ने रोटी सामने रख दी। करमचन्द की आँखों में आंसू आ गये। वही सादा सा खाना था—बाजरे की रोटी, थोड़ा-सा मक्खन, मीठा-सा साग और लस्सी का भरपूर छन्ना......।

(४)

सुबह उठते ही करमचन्द ने अपने सोने के बटन क़मीज़ से निकालकर अलग कर दिये और उन्हें करमदाद को देते हुए कहने लगा—"अब मेरे पास इनके सिवा कुछ नहीं है। इन्हें ले ले और किसी तरह जम्मू पहुँचा दे।"

करमदाद ने उसके सिर पर धप जमाई और बटन उठाकर बाहर खेतों में फेंक दिये। बोला—"मेरे खेत सोना उगलते हैं। तू मुझे यह झूठा सोना क्या देगा। उठा हल और चल खेत में काम कर। बहुत भटक चुका। अब मैं तुझे कहीं नहीं जाने दूँगा।"

करमचन्द और करमदाद ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। दोनों देर तक एक दूसरे की तरफ़ देखते रहे। फिर करमचन्द ने धीरे से हल उठाकर अपने कन्धे पर रख लिया। करमदाद ने मुस्कराकर बैलों की जोड़ी संभाली और दोनों साथ-साथ घर के आंगन से बाहर निकल गये।

बाली उन्हें यों जाते देखकर ऊँची-ऊँची आवाज़ में गाने लगी।

: ६ :

कश्मीर को सलाम

यह बात कि कश्मीर स्वर्ग-तुल्य है, मुझे उस समय तक नहीं ज्ञात हुई, जब तक मैं उस स्वर्ग से बाहर नहीं निकाला गया। मेरा मतलब यह है कि मैं चूँकि बचपन ही से कश्मीर में रहता बसता चला आया था, इस लिये मेरे लिये कश्मीर के उपवनों की सुन्दरता, उसकी घाटियों की मनोहरता, उसकी झीलों की ख़ूबसूरती और उसके पहाड़ों की फबन और मोहिनी कोई अचंभे की बात नहीं थी। मैं समझता था, शायद दुनिया में इसी तरह की ख़ूबसूरती होती होगी, ऐसे सुन्दर दृश्य हर जगह पाये जाते होंगे, हर जगह डूबता हुआ सूरज इसी तरह झीलों में सोना रोलता होगा, इसी तरह शबनमी धुँधलकों में किसी अनजान घाटी पर लाखों रंगबिरंगे फूल खिल जाते होंगे। पहाड़ के ऊँचे-ऊँचे पेड़ों का झुण्ड इसी तरह किसी ख़ामोश रहस्यमय दर्रे पर खड़ा एक पहाड़ी सिलसिले को देखता हुआ शहद के छत्तों में काम करती हुई मधुमक्खियों की गूँज से चौंक पड़ता होगा, जिस तरह ऊषा के अक्स से लाल डल में चप्पू चलाती हुई किसी कोमल कश्मीरी सुन्दरी के हाथों से बर्फ़पोश चोटियों का अक्स चौंक कर टूट जाता है। यह और ऐसे हज़ारों सुन्दर दृश्य दूसरी जगहों पर भी पाये जाते होंगे। ऐसा मैं अपने

बचपन में, अपने लड़कपन में और अपनी जवानी के पहले दिनों में सोचा करता था।

लेकिन जब मैं उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये अपने माँ-बाप की आज्ञा से कश्मीर से बाहर गया, उस समय मुझे मालूम हुआ कि मैं कितना ग़लत सोचा करता था। स्वर्ग की क़द्र स्वर्ग से बाहर निकलकर ही मालूम होती है। यह बात न थी कि कश्मीर से बाहर दुनिया सुन्दर न थी। सारी दुनिया ख़ूबसूरत है, सुन्दरता, मनोहरता और मोहिनी दुनिया के हर कोने में है, लेकिन प्रकृति की जो सुन्दरता, निखार और रंग मैंने कश्मीर में देखा है, कहीं और नहीं देखा। इससे अच्छे और सुन्दर रूप में कभी नहीं देखा। मुमकिन है यह मेरे बचपन का ख़याल हो और आप जानते हैं कि बचपन के ख़याल कितने मज़बूत होते हैं, वे किस तरह मन के कोने-कोने में अपनी जड़ें फैलाते हैं। मैंने ऐसे दोस्तों को भी देखा है, जो अपने गाँव के इमली के झाड़ का ज़िक्र भी इसी ढंग से करते हैं, जिस ढंग से मैं कश्मीर की पुष्पाच्छादित वादियों का ज़िक्र करता हूँ। शायद स्वर्ग कहीं मानव के दिल के बाहर नहीं है, वह उसके दिल के अन्दर है। अगर ऐसा है तब भी मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि मेरे दिल के अन्दर जो स्वर्ग है वह कश्मीर है।

आजकल मैं उस स्वर्ग से बहुत दूर रहता हूँ लेकिन फिर भी उसकी याद किसी सदाबहार फूल की तरह दिल में हर समय महकती रहती है और जब मैं सुबह के समय सफ़ेद पालों वाली किश्तियों के परे समुद्र में सूरज की किरनों को अपना सुनहरा जाल फेंकते हुए देखता हूँ तो मुझे वह सुबह याद आ जाती है जब मैंने पहली बार वुल्लर झील को देखा था। जब हलकी-हलकी धुँध एक रेशमी आँचल की तरह बार-बार गालों से छू जाती थी और झील की नीली सतह शान्त थी और दूर-दूर नीले पहाड़ एक दायरे के रूप में फैले हुए थे। और चप्पू मेरे हाथ में रुक गया था और मेरी किश्ती के निकट नीलोफ़र के फूल आश्चर्य से मुझे देख रहे थे और दूर, एक बड़ी सी किश्ती में, एक

मल्लाह बैठा था और उसकी पत्नी एक बच्चे को गोद में लिये खड़ी थी और उधर देख रही थी जिधर से सूर्योदय होता है। मुझे उस समय वह माँ साकार आशीर्वाद मालूम हुई। जैसे धरती माँ हो और आकाश सृष्टि का मन्दिर हो। और बच्चा खिलखिलाकर हँस पड़ा और सारी दुनिया जाग गई और मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मल्लाह का चप्पू और नीलोफ़र के काँपते हुए फूल और झील की ख़ामोश सतह और पहाड़ों की नीली चोटियाँ साँस रोके उस हँसी की प्रतीक्षा कर रही थीं। सूरज निकला, बच्चा हँसा और दुनिया जाग गई और रंगीन हो गई।

याद की सुरमई घाटियों में कश्मीर के कई नगीने चमक उठते हैं। बहराम गिल से परे एक घाटी थी जहाँ मैं रास्ता भटककर आ निकला था। मकई का एक ढलवान खेत था जिसमें फ़सल अच्छी तरह से फूली-फली नहीं थी। मकई के पौदे छिदरे-छिदरे थे और आड़े-तिर्छे उगे हुए थे। खेत के बीच में एक मचान था जो भूरी घास से छता हुआ था, लेकिन मचान पर कोई न था। दोपहर का समय था और मुझे बड़ी ज़ोर की भूख लग रही थी। मैं आगे बढ़ता चला गया। आगे घास का एक लम्बा सा टुकड़ा था जिसमें डैफ़ोडिल के पीले-पीले फूल खिले हुए थे। उससे आगे ऊँचाई पर आलूचे का पेड़ था जो सफ़ेद-सफ़ेद फूलों से भरा हुआ था और उसके क़रीब एक छत थी जिस पर उस घर के लोग खाना खा रहे थे। एक बूढ़ा मोची था जिसकी सफ़ेद दाढ़ी थी और तांबे ऐसी रंगत थी, एक उसका जवान बेटा था, जिनकी नीली आँखों में एक आशामयी मुस्कान थी। एक जवान बेटे की सुन्दर पत्नी थी, जिसकी गोद में एक प्यारा-सा बच्चा था। दो बहनें थीं। एक उनका छोटा भाई था जिसने एक मैली चिकट सी क़मीज़ पहिन रक्खी थी और जो मुझे देख कर खाते-खाते ठिठक गया था और फिर हँसने लगा था और चावल और कुड़म का साग उसकी उंगलियों से लगा हुआ था और उसकी आँखों में वह हैरत

थी जो अजनबी को देखकर होती है और होंठों पर वह मुस्कराहट थी जो डर से नहीं, बेफ़िक्री से पैदा होती है। मुझे देखकर बूढ़ा मोची मुस्कराया। उसने मुझ से यह भी नहीं पूछा कि तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, किधर जा रहे हो, तुम्हारा नाम क्या है, तुम्हारा धर्म क्या है? और उसने मुझे खाने को कहा और मैं वहीं लाल बजरी की छत पर बैठकर उन लोगों के साथ खाना खाने लगा और एक बहन ने मेरे सामने मिट्टी के प्याले में चावल और साग रख दिया और सफ़ेद मक्खन का एक गोला और लाल पिसी हुई मिर्चें और नमक, और मैं खाने लगा। हम लोग इस तरह बातें करने लगे जैसे वे लोग बरसों से मुझे जानते हों, जैसे मैं उनके कुटुम्ब का ही एक सदस्य हूँ। और फिर खाना खाकर बूढ़ा मोची एक छोटे से रंदे से चमड़ा कमाने लगा और जवान बेटा खुली हुई धूप को तेज़ समझकर आलूचे के पेड़ के नीचे बैठकर एक पुराने जूते में तला लगाने लगा और मुझसे बातें करने लगा। उसकी पत्नी भी हमारे पास आ बैठी और चादर की ओट में अपने बच्चे को छिपाकर दूध पिलाने लगी और जवान मोची मुझसे कहने लगा—"अबकी मकई की फ़सल अच्छी नहीं हुई, उसे ओले मार गये हैं और घास भी जगह-जगह से बैठ गई है।" इतने में वे दोनों शरीर बहनें आलूचे के पेड़ पर चढ़ गईं और डालियाँ हिला-हिलाकर उन्होंने इतने फूल हम पर बरसा दिये कि हम सफ़ेद-सफ़ेद फूलों से लद गये और छत के दूसरे कोने के निकट खुली धूप में बैठा हुआ बूढ़ा मोची हँसने लगा। खुली धूप में उसके सफ़ेद दाँत दमक रहे थे और उसके ताँबे की रंगत के गाल चमक रहे थे, और उसकी गहरी नीली आँखें चमक रही थीं और वे दोनों शरीर बहनें हम पर फूल बरसा रही थीं, और जवान मोची के सर पर फूल थे, जूते के तले के ऊपर फूल थे, फूल मेरी ऐनक की कमानी पर अटक गये थे और फूलों से उस औरत की चादर भर गई थी और उसके बच्चे के नन्हे-नन्हे पाँव फूलों से गुँथे हुए मालूम होते थे। और जब मैं सुस्ता

चुका तो मैंने उस बूढ़े मोची को और उसके बेटे को और उसकी पत्नी को सलाम किया और फिर वे दोनों शरीर बहनें और उनका छोटा भाई, जिसने केवल एक मैली चिकट क़मीज़ पहन रक्खी थी, और जो मेरी ऐनक की तरफ़ देखकर हँसता था, वे तीनों मुझे ढलवान से आगे रास्ता बताने के लिये आये और जब वे मुझे रास्ते पर लगा चुके तो चश्मे के किनारे खेलने बैठ गये और शायद दूसरे ही क्षण मुझे भूल गये। लेकिन मैं उन्हें नहीं भूला हूँ। वह भोली हँसी, वह पवित्र स्नेह, प्यार व मुहब्बत की वह पवित्र निशानी, जो इस जीवन की यात्रा में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को देता है, वह आज भी मेरे हृदय में उसी तरह सुरक्षित है।

मुझे कश्मीर गये हुए मुद्दतें गुज़र गईं। इस बीच में कश्मीर बहुत कुछ बदल चुका है। क्योंकि यह स्वर्ग-तुल्य देश मानवीय स्वर्ग है और मनुष्य का स्वर्ग हमेशा बदलता रहता है। मैंने उस युग में भी इस स्वर्ग में नरक के दहकते हुए अंगारे देखे थे, दुख और दरिद्रता की साकार मूर्तियाँ, गरीबी के भयानक चित्र, स्वर्ग के सौन्दर्य का लेन-देन। मैं जानता था यह दहकते हुए अंगारे एक दिन भड़ककर ज्वालामुखी बन जायँगे और यह लावा दूर-दूर तक कश्मीर के सुन्दर उपवनों और घाटियों में फैल जायगा। और वही हुआ जिसकी मुझे आशंका थी, और कश्मीर की सुन्दर घाटी रक्त में लिथड़ गई।

और आज मैं अपने स्वर्ग-तुल्य कश्मीर से बहुत दूर बैठा हूँ और आज मैं नहीं कह सकता कि वह माँ कहाँ है जो सूर्योदय से पहले वुल्लर झील के बीच में अपने नवजात शिशु को लिये साकार आशीर्वाद बनकर खड़ी थी। उसका वह पति कहाँ है जो दोनों हाथ चप्पुओं पर रक्खे उसी किश्ती में बैठा था और अपनी पत्नी को प्यार भरी नज़रों से देख रहा था। आज मैं नहीं कह सकता कि कश्मीर के इस महान् संघर्ष ने उन्हें कहाँ पहुंचा दिया है लेकिन वे जहाँ कहीं भी हों, उन्हें मेरा सलाम पहुँचे।

आज मुझे फिर वह आलूचे का पेड़ याद आता है और मकई के खेतों में भूरी घास से छता हुआ मचान, और लाल बजरी की छत पर बैठा हुआ बूढ़ा मोची, जो रन्दे से चमड़ा कमा रहा है। आज फिर मेरे सर के ऊपर आलूचे के सफ़ेद-सफ़ेद फूल गिर रहे हैं और मेरे कानों में उन दोनों शरीर बहनों की हँसी है और उस लड़के की आश्चर्य-मिश्रित मुस्कान है जिसने केवल एक मैली चिकट क़मीज़ पहन रक्खी है और जिसकी उंगलियों में सफ़ेद चावल के दाने और कुड़म का साग लगा हुआ है। मैं नहीं जानता वे लोग आज कहाँ हैं, लेकिन वे जहाँ भी हों, उन्हें मेरा सलाम पहुँचे।

शायद वह आलूचे का पेड़ आज फूलों से लदा न हो। यह भी हो सकता है कि मकई के ढलवान खेत में किसी ने हल न चलाया हो। शायद वह बूढ़ा मोची अपने घर की लाल बजरी की छत पर चमड़ा नहीं कमा रहा बल्कि सड़क के किनारे पत्थर कूट रहा है और उसका बेटा इस महान् संघर्ष में अपनी बहनों की इज़्ज़त के लिये लड़ते-लड़ते मारा गया है, शायद आज मकई के खेत में घास से छते हुए मचान पर एक विधवा बैठी है जिसकी काली चादर में नया कश्मीर दूध पी रहा है।

हो सकता है यह सब कुछ सही हो, लेकिन मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि कश्मीर हमेशा स्वर्ग-तुल्य रहेगा। रक्त में लिथड़ी हुई घाटी को उसके बच्चे फिर से स्वयं बसायेंगे, आलूचे के पेड़ में फिर से फूल खिलेंगे, मकई के खेतों में सुनहरे दानों वाले भुट्टे फिर से नज़र आयेंगे, मिट्टी के प्याले में चावल और साग और मक्खन होगा और बहनों की हँसी होगी और भाइयों के ठहाके—!

फ़ीरोज़पुरी नाले के ऊपर एक पनचक्की है, यहाँ पत्थर के दो पाट तेज़ी से घूम रहे हैं, पानी पनचक्की से झरने की तरह गिर रहा है, पास ही घास के क्षेत्र में लम्बे-लम्बे डंठलों पर बड़े-बड़े सफ़ेद फूल

झुके हुए हैं और सारे वातावरण में सौंफ़ के पौदों की खुशबू है। मैंने इस जगह पर लेटे-लेटे गोर्की का उपन्यास 'माँ' पढ़ा था।

आज मैं फिर वहीं जाना चाहता हूँ और उसी पनचक्की के निकट बैठ कर वही उपन्यास पढ़ना चाहता हूँ क्योंकि मेरा विश्वास है कि कश्मीर की धरती गोर्की की 'माँ' है। वह धरती मेरी भी माँ है और लोग कहते हैं कि माँ के चरणों तले स्वर्ग होता है।

: ७ :

सड़क के किनारे

मैं सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ और डल झील का दृश्य देख रहा हूँ। मैं बहुत समय के बाद कश्मीर आया हूँ, लेकिन डल मुझे उसी तरह ख़ूबसूरत और जवान नज़र आती है। इसी के गहरे नीले पानी में शंकराचार्य के मन्दिर का अक्स काँप रहा है और लाल परदे वाले शिकारे पानी की सतह को चीरते हुए निशातबाग़ की तरफ़ बढ़ रहे हैं। जब ये शिकारे तैरते हुए नीलोफ़र के फूलों के क़रीब से गुज़रते हैं तो नीलोफ़र के सोये हुए फूलों पर पानी की फुहारें पड़ जाती हैं और वे चौंककर पानी की सतह पर दौड़ने लगते हैं। शिकारे आगे बढ़ जाते हैं। हाँजियों का गीत जल के उजले-उजले पानी से उभरता आ रहा है—

बाग़े निशात के गुलो
शाद रहो जवाँ रहो,
तुम पे निसार जन्नतें
रूह फ़ज़ा मसर्रतें।
मस्त नशे में रात दिन
ख़ुर्रमो शादमाँ रहो।
बाग़े निशात के गुलो।

हाँ, यह मेरा जाना-पहिचाना वही कश्मीर है जिसके बेटों ने हज़ारों मुसीबतों के होते हुए भी अपनी सौंदर्य-साधना नहीं खोई, अपनी ख़ुशबू नहीं खोई। जीवित रहने की अभिलाषा और हँसते हुए मेहनत करने की उमंग नहीं खोई। यह मेरा वही जाना पहिचाना कश्मीर है।

मैं सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ। यह सड़क जो हरि नगर से अनन्तनाग आती जाती है। इस रास्ते में लौ-जैसे चनार हैं और बादामों के बाँके पेड़, नाशपातियों के झुण्ड और सेब के पेड़। बर्फ़ ज़मीन में घुल गई है और अभी अभी नई ऋतु की हरियाली बनकर फूटी है। सेब की शाख़ों पर कलियाँ चटक गई हैं, उनकी गुलाबी मुस्कराहटें जगह-जगह रास्ता चलने वालों के पाँव रोक लेती हैं। मैं भी यहां ठिठक जाता हूँ क्योंकि यहाँ सेब के फूल हैं, एक चश्मा है, एक गाय है और एक सुन्दर चरवाही है, जो गाय को चश्मे से पानी पिला रही है। मैं लड़की से कहता हूँ कि तुम ज़रा गाय को परे हटा लो तो मैं पानी पी लूँ।

लड़की—तुम ज़रा परे हटकर बैठ जाओ और गाय को पानी पी लेने दो। वह तुम्हारे साये से डरती है।

मैं—मुझे सख़्त प्यास लगी है।

लड़की—प्यास इन्सान और हैवान दोनों को बराबर लगती है।

मैं—पहले मैं पानी पी लूँ।

लड़की—पहले गाय पानी पी ले। गाय को देखते नहीं हो, पानी पी रही है, इसे बीच में से क्यों हटा दूँ? तुम पानी पी रहे होते तो मैं तुम्हारे हाथ से पानी का प्याला छीन लेती?

मैं—(हँसकर) तुम बड़ी समझदार मालूम होती हो। परन्तु आश्चर्य है, इतनी सूझ-बूझ रखते हुए भी तुम चारवाहियों का काम करती हो।

लड़की—चरवाहियों के काम के लिये तो बड़ी सूझ-बूझ चाहिये।

गाय-भैंसों के रेवड़ सँभालने के अतिरिक्त उसे तुम्हारे जैसे राह-चलते हुए समझदारों से भी तो निपटना होता है।

(दोनों हँसते हैं)

मैं—तुम्हारा नाम बेगमाँ है न ?

लड़की—(हँसकर) नहीं, मेरा नाम ज़ैनब है, मैं यहाँ गाँव के स्कूल में पढ़ाती हूँ।

मैं—स्कूल में पढ़ाती हो कि गाय-भैंस चराती हो ?

लड़की—यह गाय तो एक अंधे लड़के की है जिसके माँ-बाप पंजाब के दंगे में मारे गये थे ! वे अपना देश छोड़कर मेहनत-मज़दूरी के लिये पंजाब गये थे, फिर उन्हें आना नसीब न हुआ।

मैं—यह अंधा लड़का कैसे बच गया ? क्या यह यहीं था ?

लड़की—यह भी अपने माँ-बाप के साथ था, कुछ फ़िसादी इसे भी मारने पर तुले हुए थे, लेकिन फिर उन्होंने तरस खाकर केवल उसकी आंखें निकाल दीं और उसे जीवित रहने दिया। उसने उस दिन से कोई फ़िसाद नहीं देखा, दंगों को केवल सुना है। ऐसी-ऐसी भयानक आवाज़ें सुनता है कि हर रात सोते-सोते जागकर चीखने लगता है—'मुझे बचाओ, मुझे बचाओ।'

मैं—ख़ैर, वह युग अब बीत गया।

लड़की—(आह भरकर) हाँ, लेकिन उस बच्चे को रोशनी नहीं मिलेगी, न मेरा पति ही मुझे मिलेगा।

मैं—तुम्हारा पति ?

लड़की—हाँ, वह हमारे गांव के स्कूल में बच्चों को पढ़ाता था। अब उसकी जगह मैं पढ़ाती हूँ। हम दोनों एक दूसरे को चाहते थे। लेकिन यह दंगे से बहुत पहले की बात है। वह मुझे छिप-छिपकर पढ़ाया करता था और मेरे माँ-बाप मेरी शादी नम्बरदार के लड़के से करना चाहते थे और मैं छिप-छिपकर पढ़ती थी और नम्बरदार के बेटे पर सौ लानत भेजती थी। फिर मेरी शादी की बात पक्की हो

गई, फिर दंगों की ख़बरें आने लगीं और फिर मेरी शादी में थोड़े ही दिन रह गये तो वह अंधा लड़का घूमता-घामता भीख मांगता वापस गांव में आ निकला। उसको इस हालत में देखकर गांव वालों के क्रोध की हद न रही।

(भीड़ का शोर)

(ढोल पीटे जा रहे हैं। लोग हँस रहे हैं, चीख़ रहे हैं, इस बेहंगम शोर में नीचे की आवाज़ें उभरती हैं)

१—मारो मारो, इन सब को मारो। एक भी न बचने पाये।

२—एक आंख के बदले दोनों आंखें निकाल दो।

३—बनिये का घर जला दो।

४—लाले और उसकी बेटी को धरती में गाड़ दो।

५—चलो, मारो, मारो, मारो!

६—हम खून का बदला लेंगे, अपने दुश्मनों का खून बहायेंगे।

लड़की—आन की आन में सारा गाँव इकट्ठा हो गया। दूसरे फ़िरक़े के लोगों ने घबराकर घर छोड़ दिये और भागकर स्कूल की चारदीवारी में पनाह ली। गांव वालों ने स्कूल के गिर्द घेरा डाल दिया। अन्दर स्कूल में उस्ताद पढ़ा रहा था।

स्कूल मास्टर—पढ़ो बच्चो! सब इन्सान भाई भाई हैं।

बाहर से आवाज़ें—मारो, मारो, सबको मारो।

अन्दर की आवाज़ें—हमें बचाओ, किसी तरह से हमें बचाओ। हम ने कोई अपराध नहीं किया है; हम तो सैकड़ों बरस से यहाँ रहते चले आये हैं। मास्टर जी, आपने कभी देखा, हमने गांव वालों के विरुद्ध कभी कोई बात की हो।

"यह लीजिये ज़ेवर, मेरी बेटी की लाज बचा लीजिये"

बाहर से आवाज़ें—जिन्दा गाड़ देंगे। पत्थरों से मार डालेंगे। तेल में तल देंगे।

अन्दर की आवाज़ें—हम ने कुछ नहीं किया है। यहां से चार सौ मील पर जिन लोगों ने तुम्हारे गांव वालों की जानें ली हैं तुम उसका बदला उनसे लो, हमसे क्यों लेते हो ?

एक लड़की—भाई ! मैं तो गाँव की कुँआरी हूँ, मैं तुम्हारी इज़्ज़त हूँ, मुझे बचा लो भाई !

एक लड़का—उस्ताद जी ! हम क्या पढ़ें, सब इन्सान भाई-भाई हैं ?

मास्टर—चुप रहो, मैं बाहर जाता हूँ।

(क़दमों की आवाज़, बाहर का शोर एकदम बढ़ जाता है। "मारो-मारो, टुकड़े-टुकड़े करदो, क़ीमा बना दो, निकालो सब को बाहर। एक को भी ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे।"

मास्टर—गाँव वालो ! मेरी सुनो।

(सब चुप हो जाते हैं। फिर एकदम चिल्लाने लगते हैं)

"नहीं-नहीं, हम नहीं सुनेंगे। हमें ख़ून चाहिये ख़ून।"

मास्टर—तुम्हें ख़ून चाहिये ? मेरा ख़ून ले लो, लेकिन यह कहाँ का न्याय है कि तुम बाहर के फ़िसादियों के ख़ून का बदला अपने गाँव वालों से लो।

एक आवाज़—यह अन्धा लड़का देखते हो, इन लोगों ने इसके माँ बाप को मार दिया, इसकी आँखें निकाल दीं। हम भी अब यही सलूक करेंगे !

दूसरी आवाज़—आगे से हट जाओ मास्टर जी।

तीसरी आवाज़—मैं तुम से कहता हूँ, दरवाज़े से परे हट जाओ।

मास्टर—मैं पीछे नहीं हटूँगा। मुझे पहले दर्जे की पुस्तक की रक्षा करनी है जिस में लिखा है—'सब इन्सान भाई-भाई हैं।' और मुझे "मेरी अम्माँ, मेरी प्यारी, मेरी जान अम्माँ" की प्रतिष्ठा बचानी है। मैंने दस बरस इस किताब को पढ़ाया है, आज यह किताब तुम मुझसे छीन रहे हो ? मैं यह किताब नहीं दूँगा। अपने जीते जी

मैं इसके एक-एक शब्द की रक्षा करूँगा। गाँव वालो, इस किताब को न फाड़ो, यह तुम्हारे बच्चों की किताब है, इसमें सेब के फूल हैं और नाशपाती के पेड़ हैं और भाई-बहन मदरसे जा रहे हैं। और सूरज निकल रहा है और किसान खेतों में हल चला रहे हैं। इसके बच्चे बाप का अदब करते हैं और सलीम मोहन का दोस्त है और रज़िया निर्मला की सहेली है। गाँव वालो, यह तुम्हारे बच्चों की किताब है। इसे क़त्ल न करो, नई ज़िन्दगी को उभरने दो।

एक आवाज़—क्या बकता है यह, पहले इसी पर हाथ साफ़ करो। दुश्मनों से मिल गया है यह।

दूसरी तीसरी आवाज़ें—हाँ, हाँ, मार डालो इसे, आगे बढ़ो, देर हो रही है।

मास्टर—तुम्हें बदला चाहिये न, दो आँखों के बदले मेरी दो आँखें ले लो।

चौथी पाँचवीं आवाज़ें—देखते क्या हो जी, आगे बढ़ जाओ, मास्टर आप ही पीछे हट जायगा।

बहुत सी आवाज़ें—चलो आगे बढ़ो .. मारो .. मारो . मारो ...

(शोर कम हो जाता है। लड़की की आवाज़ उभर आती है)

ज़ैनब—गाँव वालों ने उसे मार डाला, स्कूल की चौखट पर स्कूल मास्टर का खून बहा। उसके लाल-लाल ताज़ा खून को देखकर गाँव वाले एक दम चौंक गये। उनका सारा ग़ुस्सा उसके पवित्र खून में डूब गया और वे परेशान होकर पीछे हट गये और अपने किये पर लज्जित होकर अपने-अपने घरों को चले गये और फिर उस दिन के बाद उन्होंने दूसरे फ़िरक़े वालों को कुछ नहीं कहा। हमारे गाँव में सब अमन चैन से रहते हैं और किसी से कोई कुछ पूछताछ नहीं करता और अब कहीं कोई झगड़ा नहीं है।

मैं—अब शायद तुम्हारा ब्याह भी नम्बरदार के बेटे से हो गया होगा।

ज़ैनब—कैसी बातें करते हो ? मेरा पति जीवित है। लोगों के लिये वह मर चुका है और उन्होंने स्कूल मास्टर की लाश को क़ब्र में गाड़ दिया है। मगर मेरे लिये वह ज़िन्दा है और उसके जीते जी मैं नम्बरदार के बेटे से कैसे शादी कर सकती हूँ ? अब मैं हर रोज़ स्कूल में पढ़ाती हूँ और हर रोज़ उर्दू की पहली किताब में मुझे उसका मुस्कराता हुआ चेहरा साफ़ दिखाई देता है और फिर मैं मुस्करा कर स्कूल के बच्चों की तरफ़ देखती हूँ तो वे मुझे अपने ही बच्चे मालूम होते हैं। मैं, मेरा पति, मेरे बच्चे, अन्धे लड़के की गाय, मेरा देश कितना सुन्दर है अजनबी !...... तुम किस देश के रहने वाले हो अजनबी ?

मैं—मेरा कोई देश नहीं है। मैं इन्सानों की सड़क पर रहता हूँ, चलता हूँ और कभी-कभी रुककर किसी चश्मे की सतह से होंठ मिलाकर प्यास बुझा लेता हूँ। अब तुम अपनी गाय को परे हटा लो, यह पानी पी चुकी है और मेरे कोट की आस्तीन चबा रही है।

(ज़ैनब हँसती है और उसकी गुम होती हुई आवाज़ में संगीत उभरता है । कुछ क्षणों के बाद बैकग्राउंड म्यूज़िक के स्वर ऊँचे होते जाते हैं, फिर थरथरा कर कम हो जाते हैं।)

मैं फिर सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ। यह सड़क जो मटन से पहलगाम को जाती है। मटन हिन्दुओं का तीर्थ है, यहाँ दूर-दूर से यात्री आते हैं और मटन के मन्दिरों और चश्मों का दर्शन करके अमरनाथ की तरफ़ चले जाते हैं। मटन ब्राह्मणों की बस्ती है और यहाँ हज़ारों वर्षों से ब्राह्मण रहते-बसते हैं और बिना किसी डर या ख़तरे के पूजा-पाठ में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं।

मटन में कोई मसजिद नहीं है। हालाँकि आस-पास के गाँवों में मुसलमानों की बहुत अधिक आबादी है। मेरा मतलब है कि मटन में पहले कोई मसजिद नहीं थी। अबकी कई वर्षों के बाद जो मैं आया हूँ तो क्या देखता हूँ कि यहाँ पर एक छोटी सी मसजिद है। मैं उस मसजिद को देखकर बहुत खुश हुआ और दौड़ा-दौड़ा मुल्ला जी के पास

गया। मुल्ला जी का हाथ कटा हुआ था और उनकी आँखें बड़ी-बड़ी और चमकीली थीं।

मैं—मुल्ला जी, यह मसजिद कब बनी ?

मुल्ला—दंगे के दिनों में।

मैं—दंगे के दिनों में ? आश्चर्य है, दंगे फ़िसाद के दिनों में तो मसजिदें और मन्दिर टूटते हैं, बनते नहीं। आप कैसी अजीब बात कह रहे हैं ?

मुल्ला—हमारा मुल्क कश्मीर बड़ा अजीब मुल्क है न ? इसलिये यहाँ पर बड़ी-बड़ी अजीब बातें होती हैं।

मैं—पूरी बात बताइये।

मुल्ला—जब तुम्हारे यहाँ दंगा हो रहा था और खून की नदियाँ बह रही थीं और हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे मालूम होते थे, उन दिनों कुछ फ़िसादियों ने यहाँ, हमारे मटन में भी आकर दंगा करना चाहा था। उन्होंने आस-पास के देहातों में किसानों को भड़का दिया कि वे मटन के मठ पर हमला करें और ब्राह्मणों को मार कर और मठ को जलाकर उन मसजिदों का बदला लें जिनको नुक़सान पहुँचाया गया है।

मैं—तो फिर क्या हुआ ? मन्दिर तो जले नहीं, वैसे ही मौजूद हैं।

मुल्ला—तुम सुनो तो, जब फ़िसादी यह खिचड़ी पका चुके तो उनमें से कुछ लोग मेरे पास फ़तवा हासिल करने के लिये आये। मैंने फ़तवा नहीं दिया। मैंने कहा—यह हमारे धर्म के विरुद्ध बात है। इस पर वे लोग निराश हो कर चले गये।

मैं—फिर ?

मुल्ला—लेकिन फ़िसादियों ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने किसानों को बहकाना शुरू किया और आखिर में कुछ लोगों को मठ पर हमला करने के लिये तैयार भी कर लिया। जब मुझे सूचना मिली, मैं यहाँ नहीं था, एक गाँव में गया हुआ था। वहाँ मैंने बहुत से किसानों को

मठ की रक्षा करने के लिये तैयार भी कर लिया और हम लोग रातों-रात मठ के सामने पहुँच गये। बेचारे पुजारी बहुत डरे हुए थे। दूर से ढोल ताशों की आवाज़ आ रही थी। फ़िसादी क़रीब आरहे थे।

(मजमे की आवाज़ें, ढोल पीटने की आवाज़ें)

१—यहाँ मठ नहीं रह सकता।

२—शहीद मसजिदों का बदला लिया जायगा।

३—जला दो इन्हें।

४—पुजारियों को चश्मे में फेंक दो।

५—आगे बढ़ो, जवानो! लोहे के जंगले को पार कर जाओ, इन चश्मों की सारी मछलियाँ तुम्हारी हैं।

मुल्ला—ठहरो, तुम लोग इस जंगले से आगे नहीं जा सकते।

एक आवाज़—क्यों नहीं जा सकते? हम सब कुछ फूँक के रख देंगे।

मुल्ला—यह इस्लाम के ख़िलाफ़ है।

दूसरी आवाज़—मुल्ला दुश्मनों से मिल गया है।

तीसरी आवाज़—उनकी तरफ़दारी कर रहा है।

चौथी आवाज़—मुल्ला जी सामने से हट जाओ।

मुल्ला—मेरे जीते जी, तुम इस मठ पर हमला नहीं कर सकते, तुम लोग जिनके बहकाने में आकर हमला कर रहे हो, वे हमारे देश को बरबाद कर देंगे। मैं तुमसे फिर कहता हूँ, मेरे जीते जी यह दंगा नहीं हो सकता।

एक आवाज़—मुल्ला जी ठीक कहते हैं।

दूसरी आवाज़—क्या ख़ाक ठीक कहते हैं।

तीसरी आवाज़—ये लोग हमारे भाई हैं। हज़ारों बरस से यहाँ रहते चले आये हैं।

चौथी आवाज़—इन्हीं के भाइयों ने वहाँ आग लगाई है, हम यहाँ आग लगायेंगे।

पहली आवाज़—नहीं, तुममें हिम्मत है तो वहाँ जाकर लड़ो। यहाँ हमें क्यों बरबाद करते हो ?

दूसरी आवाज़—आगे से हट जाओ।

पहली आवाज़—मुल्ला जी, सँभलिये-संभलिये।

(शोर बढ़ जाता है, फिर धीरे-धीरे कम हो जाता है। आख़िर में मुल्ला जी की आवाज़ उभर आती है।)

मुल्ला जी—उसी दंगे में मेरा यह हाथ कट गया, मगर मठ बच गया। किसानों को बहुत जल्द समझ आगई कि फ़िसादी अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। पुजारियों ने भी मेरा बहुत धन्यवाद किया। इससे पहले यहाँ मठ के आस-पास कोई मसजिद न बन सकती थी। अब उन पुजारियों ने और यहाँ के यात्रियों ने स्वयं मसजिद के लिये चन्दा जमा किया और इसके निर्माण के सिलसिले में सब आगे-आगे रहे। यह मसजिद जो अब तुम देख रहे हो उसी चन्दे से बनी है।

मैं—मुल्ला जी, आप बहुत ऊँचे आदमी हैं।

मुल्ला—मैं एक छोटा सा इन्सान हूँ बेटा, हाँ मेरी मसजिद बहुत ऊँची है। आस्मान तक जाती है।

(मधुर संगीत कुछ क्षणों के लिये बजता है)

मैं सड़क के किनारे-किनारे चल रहा हूँ। यह वह मेरा जाना-पहिचाना कश्मीर नहीं है, यह नया कश्मीर है। ज़ैनब का, मास्टर जी का और मुल्ला जी का कश्मीर। कश्मीर के बेटे डल में खिले हुए नीलोफ़र के फूल हैं जो तूफ़ान की धमक महसूस करते हुए चौंक उठते हैं और तूफ़ान की लहरों पर डोल रहे हैं और संभल-संभल कर चारों तरफ़ का निरीक्षण कर रहे हैं और लाल पर्दों वाले शिकारे तेज़ी से पानी की सतह चीरते हुए निशातबाग़ की तरफ़ बढ़ रहे हैं और हाँजी चप्पू चलाते हुए गा रहे हैं—

हुस्नो जमालो काश्मीर
दिलकशो शोख़ व दिलपज़ीर

अपना वतन है बे-नज़ीर ।
प्यारे वतन के दोस्तो
सरकशो कामरॉं रहो ।
बाग़े निशात के गुलो
शाद रहो जहाँ रहो ।

: ८ :

झील से पहले, झील के बाद

यह सड़क श्रीनगर से गुलमर्ग को जाती है। इसके दोनों ओर शमशाद के सुन्दर वृक्ष खड़े हुए हैं। यह सड़क धान के खेतों के बीच में से गुज़रती है। सड़क के दोनों ओर मन्थर-गति वाली पतली २ नदियां खेतों को सींचती हुई बहती हैं। खेतों के किनारे जहां पानी खड़ा है या चलता फिरता थम सा गया है वहां कमल और मक्खन-प्याले खिले हुए हैं—सफेद, गुलाबी, पीले। कहीं-कहीं चिनारों के तले गड़रिये गायें भेड़ें चरा रहे हैं। चार-चार स्त्रियाँ मिलकर धान कूट रही हैं और गीत गाती जा रही हैं। एक स्त्री सिर पर मटकी लिए पानी भरने जा रही है। मोटर को देख कर यूं ही अकारण हँस पड़ती है। उसके मोतियों जैसे श्वेत, चमकीले दांत बहुत देर तक आंखों में और तत्पश्चात् कल्पना में जगमगाते रहते हैं।

जो सड़क टंगमर्ग से गुलमर्ग को जाती है वह केवल तीन मील लम्बी है। इस सड़क पर अंग्रेज़ पुरुष और स्त्रियाँ सुन्दर घोड़ों पर सवार दिखाई पड़ते हैं। उनके पीछे २ भूरी रंगत वाले काश्मीरी हातू हाँपते दौड़ते चले जाते हैं। किसी के हाथ में टोकरी है, किसी के हाथ में थरमास, तो किसी की गर्दन पर किसी मेम साहब का बच्चा सवार है। मज़दूर अपनी पीठ पर ढाई मन का बिस्तर उठाए झुके हुए चढ़ाई चढ़ते चले जाते हैं। वे पंचायत वालों के वे आदर्श-वाक्य नहीं

पड़ सकते जो टंगमर्ग में 'आतशक सूज़ाक' की दवाइयों के विज्ञापनों की भांति स्थान-स्थान पर लिखे हुए हैं—"मज़दूरी में इज़्ज़त है।" "मज़दूरी से जी मत चुराओ।" "मज़दूरी करना सीखो।" इस सड़क के दोनों ओर चील और देवदार के ऊँचे २ वृक्ष हैं जिनके पांव में सफेद जतरियां और खुम्बें उगी हुई हैं, बनफ़शे के फूल हैं, स्त्रेडी की घास है और किसी देवदार पर मधुमक्खियों के छत्ते—और सारा जङ्गल उनकी मद्धम गुंजार से गूंजता प्रतीत होता है। इन छत्तों के मधु में जंगली पुष्पों का माधुर्य होता है और पौष्टिक विटामिन जिसको तैयार करते समय हाथों से स्पर्श नहीं किया जाता।

दो नन्हे २ काश्मीरी बालक इस सड़क पर चलते हुए दिखाई देते हैं। वे गुलमर्ग से थके थके पांवों से आ रहे हैं। कदाचित् घर पहुँच कर माता-पिता भी क्रोधित हों, कदाचित् भोजन न मिले, चपत ही मिलें। सड़क के नीचे बहुत दूर तक फ़िरोज़ नाला बहता है जिसके नीले जल में श्वेत-श्वेत झाग मिली हुई है—नीला जल जैसे इन काश्मीरी बालकों की आंखें, श्वेत श्वेत, जैसे मोटरों की ओर देख कर अकारण हँस पड़ने वाली कशमीरन।

दस-बारह कशमीरी लड़कियां प्याली जैसी आकृति की टोकरियों में जंगल से लकड़ियां बीन कर ला रही हैं। इन टोकरियों में वे टंगमर्ग के यात्रियों और क्षय रोग के रोगियों के लिए लकड़ियां चुन कर ला रही हैं। इन में कई लड़कियां क्षय रोगियों की भांति खांस रही हैं, क्योंकि लकड़ियां उठाने के लिए शरीर झुका कर चलना पड़ता है। इन लड़कियों की टांगें बाल्यकाल ही से बेडौल हो जाती हैं। चाल में बेढंगापन, कपोलों में गढ़े, और छातियों में सलवटें पड़ जाती हैं। यह लड़कियां कुमार अवस्था को कभी प्राप्त नहीं होतीं। पहले तो ये केवल लड़कियां होती हैं, फिर एकदम माँएँ बन जाती हैं। यौवन क्या है, रस क्या है, वन में मधुमक्खी पुष्पों का मधु क्यों संचित करती है, कमल क्यों मुस्कुराते हैं, मक्खन-प्यालों की पीली २ पंखड़ियां ठहरे हुए

जल पर क्यों कांपती रहती हैं—उन्हें इन सब बातों का ज्ञान कहां?

जो सड़क नौ हज़ार फुट की ऊँचाई पर गुलमर्ग की घाटी के प्याले के चारों ओर एक सुनहरी फीते की भांति घूमती जाती है, उसे सर्कुलर रोड कहते हैं। यहां से सारी कश्मीर घाटी दिखाई देती है—सहस्रों मील का विस्तृत मैदान, चारों ओर ऊँची २ पर्वत मालाओं से घिरा हुआ। इसे देख कर स्पष्ट रूप से पता चलता है कि आज से हज़ारों वर्ष पूर्व जबकि मनुष्य का जन्म नहीं हुआ था, इन पर्वतों ने एक नीली झील को घेर रखा था। चारों ओर बर्फ के ग्लेशियर होंगे और बीच में यह झील, जिसके चिह्न अब डल, वुलर और मानसबल की झीलों में मिलते हैं। कभी २ यही प्रतीत होता है कि अब भी वही पुरानी झील है, वही हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियां हैं और सूर्य की प्रथम किरण के साथ मैं ही वह प्रथम व्यक्ति हूं जो इस रहस्यपूर्ण अलौकिक दृश्य को देख रहा हूँ। फिर उस झील का पानी सहसा कहीं विलीन हो जाता है और घाटी की वनस्पति और उसके उद्यान और उसके गांव और शहर आंखों के आगे फैलते जाते हैं। देवदारों का सन्नाटा, फ़िरोज़ नाले के कोलाहल में घुला हुआ लगता है। और जीवन हज़ारों वर्ष आगे की ओर लौट आता है।

इस सड़क पर मेरी भेंट एक आयरिश लड़की से होती है। नाम है लीरा ओ-कॉनर (Lira-o-Connor)। लीरा की आंखें न नीली हैं, न हरी, न भूरी बल्कि इन तीनों रंगों से मिलता-जुलता हुआ कोई और रंग। लीरा की आंखों में एक अद्‌भुत आकर्षण है जैसे ये सदा सपने ही देखा करती हैं। लीरा के केशों का रंग प्लाटिनम जैसा है—कोमल रेशमी और महीन केश। इन पर उसने एक सुनहरा रूमाल बांध रखा है। वह आराम से बैठी देवदारों की छाया में इस घाटी का स्कैच् बना रही है—जहां वृक्षों की फुंगियों का एक जाल सा बना हुआ है और जिसके छोर पर नदी के पानी की एक लकीर खिंच गई है।

"यहाँ खड़े २ क्या कर रहे हो ? अपना रास्ता लो।" उसने मेरी ओर देख कर कहा।

मैंने अविचलित भाव से कहा—"यहां हरा रंग अधिक गहरा है। फूलों की क्यारियों और देवदार के वृक्षों के जाल का संपात ठीक नहीं है। विशेषतया यहां तो......"

"बैठ जाओ। मैं अभी ठीक करती हूँ। क्या तुम्हें वाटर-कलर का शौक़ है ?"

"मुझे वाटर-कलर से प्रेम है, यूँ समझिए कि अभी प्रेम हुआ है।"

लौरा मुस्कराई और पौन घन्टे तक निश्चेष्ट बैठी स्कैच् बनाती रही।

"मुझे भूख लगी है और मेरे पास केवल यह दो-चार बिस्कुट ही हैं।" लौरा ने एक बिस्कुट होंटों के बीच में रखते हुए कहा।

"परन्तु" मैंने कहा "मेरे पास यह भुना हुआ मुर्ग है इस थर्मास में और कुछ चपातियाँ भी हैं। यदि तुम्हें भारतीय भोजन की ओर से अरुचि न हो तो......"

"कदापि नहीं, बल्कि मैं तो......"

वह बड़ी रुचि से खाने लगी। फिर बोली "इसमें मिर्चें बहुत अधिक हैं। न जाने तुम लोग मिर्चें इतनी क्यों पसंद करते हो ?"

"यह खाने के स्वाद में वृद्धि कर देती हैं। भारतीयों की जहां अन्य सब इन्द्रियां मर चुकी हैं वहां चखने की शक्ति अभी तक बनी हुई है बल्कि निरन्तर भूखा रहने से और अधिक तीक्ष्ण हो गई है। इसलिये लाल मिर्चें......।"

"न जाने तुम लोगों में यह क्या आदत है......" उसने अपने प्लाटिनमी बालों को झटक कर कहा, "किसी पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी से बातें करो, वह हिर-फिर कर राजनीति पर आ जाता है। मैं लाल मिर्चों की बात कर रही हूँ, तुम अपने देश की राजनीति का ज़िक्र ले बैठे हो। न जाने क्या बात है ....."

उसके होंट क्रोध से तिरछे हो गए। मैंने कहा "चलो, लाल मिर्चों के ज़िक्र को जाने दो। आओ, लाल होटों की बातें करें। उन गुलाब के फूलों की जो तुम्हारे कपोलों पर खिले हुए हैं। उन चन्द्र किरणों की जिन से तुम्हारे केश बने हुए हैं। उन स्वप्नों की जो तुम्हारे नयनों की पुतलियों में कांप रहे हैं, जैसे किसी झरने की सोई हुई सतह पर तरनारी के विस्मित विकम्पित पुष्प।"

दूसरे दिन सन्ध्या के समय गुलमर्ग के बाज़ार में लीरा-ओ-कॉनर घोड़े पर सवार चली जा रही थी। मैं ने उसे देखा, उसने मुझे, परन्तु वह मुझे पहचान न सकी—"पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम।"

जो सड़क गुलमर्ग की वादी के बीचों-बीच जाती है वह गाल्फ़-कोर्स (Golf Course) को बीच में से काटती है। इस सड़क के दोनों ओर अंग्रेज़ स्त्री-पुरुष गाल्फ़ खेलते दिखाई देते हैं और काश्मीरी हातू गाल्फ़ के सामान के थैले और छड़ियाँ उठाए उनके पीछे २ भागते दिखाई पड़ते हैं। इस सड़क पर गुलमर्ग का क्लब है और आगे चल कर ठीक मध्य में एक ऊँचे स्थान पर इम्पीरियल बैंक और नीडोज़ होटल। जागीरदारों के युग में और इस से पूर्व जो महत्व धर्मशालाओं और पूजा के पवित्र स्थानों को प्राप्त था, इस महाजनी युग में वही महत्व बैंक और होटल को प्राप्त है। नये युग के प्रतीक यही हैं।

इस सड़क पर अंग्रेज़ और अंग्रेज़-नुमा हिन्दुस्तानी घोड़े दौड़ाते फिरते हैं। कश्मीरी नौकर लाल शलग़म और प्याज़ के गट्ठे उठाए हुए दिखाई देते हैं। वे अण्डों की टोकरियाँ, मटन, मटर और फल उठाए हुए ले जा रहे हैं। परन्तु यह वस्तुएँ उनके भोग के लिये नहीं हैं। साहब लोगों के बच्चों ने हैट लगा रखे हैं और मूल्यवान ऊनी स्वेटर पहन रखे हैं। मेम साहब लोगों ने कार्ड मखमल की पतलूनें पहन रखी हैं जिन्हें गुलमर्ग के कश्मीरी दर्ज़ियों ने सिया है। परन्तु वे स्वयं इन पतलूनों को नहीं पहन सकते। वे लोग केवल मज़दूरी कर सकते हैं जैसा कि पञ्चायत का आदेश है—"मज़दूरी में इज़्ज़त है",

"मज़दूरी में इज़्ज़त है", "मज़दूरी में इज़्ज़त है।"

इस सड़क पर एक हातू बैठा हुआ है। उसके साथ एक जूते गांठने वाला है और एक भिखारी। हातू पीली पीली पकी हुई हाड़ियों की एक टोकरी सामने रखे बैठा है। यह हाड़ियां वह अपने खेत की मेंड पर उगे हुए हाड़ी के वृक्ष से उतार कर लाया है। उसके खेत में जो अनाज था उसे ज़मींदार, बनिये और सरकार ने आपस में बाँट लिया। अब दो तीन हाड़ियों और सेबों के वृक्ष शेष रह गए हैं। वह उनके फल यहाँ गुलमर्ग में लाकर बेचता है जिस से कि वह साहब लोगों को हाड़ी और सेब खिला कर अपनी स्त्री और बच्चों के लिए कुछ थोड़े से चावल मोल ले सके। भिखारी आलती-पालती मारे निर्लज्जता से पैसा मांग रहा है। जूते गांठने वाला एक ऐसे जूते की मरम्मत कर रहा है जिसका मूल्य पचास रुपये से कम न होगा। स्वयं उसके पाँव नंगे हैं। तलुओं में बिवाइयाँ फूट आई हैं और एक स्थान से तो रक्त बह रहा है। परन्तु जूतों का तो खैर मूल्य होता है, भला इस रक्त का क्या मूल्य होगा!

एक वृद्धा अंग्रेज़ स्त्री अपनी रंगीन छतरी घुमा २ कर अपने साथ वाली स्त्री से कह रही थी—"माई डीयर, जब वह हिन्दुस्तानी हमारे कमरे में घुस आया तो मुझे कितना भय लगा। मैं तो भयभीत होकर दूसरे कम्पार्टमेंट में अपने पति के पास चली आई..."

आज बहुत दिनों पश्चात् फिर सर्कुलर रोड पर सैर करने निकला हूँ। यह वन मौन और निस्तब्ध है। कश्मीर की घाटी पर सूर्य अस्त हो रहा है और बढ़ते हुए अंधकार और घटते हुए प्रकाश की एक शतरंज सी बिछती जा रही है। यह वन क्यों मौन है? इस घाटी का भाग्य क्यों निद्राग्रस्त है? यह वन अपने बेटे बेटियों के लिये क्यों नहीं बोलता? इस वन का मधु, इसके अखरोट, इसके सेब, अण्डे, लकड़ी, इसका रेशम, इसका समस्त लावण्य और सुन्दरता, इसकी कोई भी वस्तु इसके बेटों के लिये नहीं है। यह कैसा व्यंग्य है। यह वन क्यों मौन

है ? यह क्यों नहीं कहता—मज़दूरी न करो। कार्ड की पतलूनें पहनो। सेब खाओ, खूबानी और अखरोट खाओ। मज़दूरी करने से इन्कार कर दो। घोड़े की सवारी करो। दनदनाते फिरो। यह धरती तुम्हारी है। यह आकाश तुम्हारा है। और यदि यह सब कुछ नहीं है तो आओ इस सारी घाटी को एक झील बना दें—पानी से भरी हुई झील—झील जिसमें टंगमर्ग और गुलमर्ग सब समा जाएँ, जिसके पानियों में मानव अत्याचार और क्रूरता के सब नारकीय घरौंदे नष्ट हो जाएँ। बस चारों ओर वही पुरानी झील हो—हज़ारों, लाखों वर्षों पहले की झील और उसके चारों ओर वही बर्फ़ के ग्लेशियर और हिमाच्छादित पर्वत खड़े हों, ताकि जब आकाश के अन्तस्तल से सूर्य की किरण उदय होकर झील की सतह पर उतरे तो हर्षोन्मत्त होकर चिल्ला उठे—"धन्यवाद है कि अभी मानव का जन्म नहीं हुआ।"

: ६ :

गुलदुम

गांव पहाड़ की चोटी पर था। चोटी नुकीली अवश्य थी परन्तु सूई की नोक तो थी नहीं कि उस पर दस-पन्द्रह घर भी सुविधा से न बनाए जा सकें। ये सब घर एक-दूसरे के साथ लगे २ एक-दूसरे का सहारा पाकर चट्टानों के ऊपर चढ़ते चले गये थे। सब से ऊंचे घर पर राजा साहब की पताका लहरा रही थी। ये घर राजा साहब के शिकारियों के थे। राजा साहब वर्ष में एक बार इस पहाड़ की रुख में शिकार खेलने आते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता कि वे दो या तीन वर्ष तक इस ओर न आते, परन्तु शिकारियों की स्वामिभक्ति की यह दशा थी कि राजा साहब की अनुपस्थिति में भी वे कभी किसी जन्तु का शिकार न करते थे। जन्तु का अर्थ यहां सूअर, रीछ और चीतों से है अन्यथा वैसे तो शिकारी रात-दिन तीतर, जल-कुक्कड़, भट लोमड़ और खरगोश का शिकार किया करते थे और न करते तो खाते क्या? पहाड़ पर जितनी भूमि खेती के योग्य थी वह सब सरकारी रुख में मिला ली गई थी। यह रुख पहाड़ की चोटी को छोड़कर—जहां केवल चट्टानें ही चट्टानें दृष्टिगोचर होती थीं—नीचे की तलहटी से नाले तक फैली हुई थीं। नाले के दूसरे किनारे से दूसरा पहाड़ आरम्भ होता था जो बिल्कुल बीहड़, वनस्पति-रहित था, जिसके पच्चीस मील आगे वह

शहर था जहां राजा साहब के महल थे। इस गांव से वह शहर इतना दूर था कि अब्दुल्ला शिकारी के अतिरिक्त, जो हर तीसरे-चौथे महीने वहां शिकारियों का वेतन प्राप्त करने जाया करता था, किसी ने वह शहर न देखा था—जिसकी नदी पर एक पुल था, पुल के उस पार एक सुन्दर गढ़ था जिसकी बुर्जियों और झरोखों में नारंगी वर्दियां पहने सन्तरी खड़े रहते थे और जिसके बाग़ों में विलक्षण फलों के वृक्ष थे। उनमें ऐसे वृक्ष नहीं थे जैसे गांव की रुख में थे अर्थात् बटङ्ग और जङ्गली नाशपातियां और पीले रङ्ग के सेबों और सुनहरे अखरोटों के वृक्ष या चीड़, देवदार और ब्यार के विशाल वृक्ष। वे तो बहुत अद्भुत से, छोटे २ वृक्ष थे जिनकी डालियां रंग-बिरंगे फलों के बोझ से झुकी हुई थीं और घास के टुकड़ों में बड़े मनोहर फूलों की क्यारियां थी। जब कभी बूढ़ा शिकारी अब्दुल्ला आग तापते हुए अपनी नीली-नीली आंखें घुमाकर राजा साहब के शहर की सज-धज का वर्णन करता तो शिकारियों के हृदयों में विस्मय और उत्सुकता की एक लहर दौड़ जाती और उनकी फैली २ पुतलियों में आग की लपटें नाचने लगतीं क्योंकि अब्दुल्ला के अतिरिक्त कोई ऐसा न था जिसने वह शहर देखा हो। शिकारियों को राजा साहब के शहर से इधर वाले कस्बे में जाने का तो साल में दो चार बार अवसर मिलता था—नमक लाने के लिए, गुड़ लाने के लिए, चाय, साबुन, कपड़ा लाने के लिए। किन्तु शहर जाने की उन्हें अब तक आवश्यकता न पड़ी थी और वैसे भी वे शहर जाते हुए घबराते थे। कितने अपरिचित से थे उस कस्बे के लोग? ऐसे देखते थे जैसे अभी झपटा मार कर कुछ छीन लेंगे। ये दृष्टियाँ, वे चेहरे, पहाड़ी शिकारियों को अच्छे न लगते थे।

जहां यह रुख समाप्त होती थी और जहां देवदार के अन्तिम वृक्ष आकाश की ओर देखते हुए रुक जाते थे वहां पर राजा साहब के वन-विभाग के आदेश से देवदार के छोटे २ पौदे उगाए गए थे। इन पौदों की रखवाली भी इन्हीं शिकारियों के ज़िम्मे थी कि वे इन देवदार के

नन्हें २ पौदों को पशुओं के प्रहार से बचाएं। इन पौदों के ऊपर चट्टानों की उस श्रेणी का आरम्भ होता था जो ऊपर चोटी तक जाती थी। इस श्रेणी के आरम्भ होते ही मार्ग में वह चश्मा आता था जो एक अंधेरी खोह में था और जिसका जल इतना शीतल था कि मनुष्य कठिनता से इसके दो घूंट पी सकता था। इस चश्मे से ऊपर चोटी से गांव तक जाने के लिये शिकारियों ने पत्थरों को काट कर सीढ़ियां बनाई थीं जो बल खाती हुई चट्टानों में घूमती हुई दस हज़ार फुट गहरी खाइयों से बचती हुई गांव में चली गई थीं जहां एक घर के ऊपर दूसरा घर, इसके ऊपर तीसरा घर और तीसरे के ऊपर चौथा घर था। वे एक दूसरे को सम्भाले हुए, एक दूसरे को ऊंचा करते हुये अन्तिम घर से जा मिलते थे जो अब्दुल्ला का घर था जिसके ऊपर राजा साहब की पताका लहराती थी।

यहां खड़े होकर दृष्टि घुमाने से चारों दिशाओं में पर्वत-श्रेणियां गिरती-पड़ती दृष्टिगोचर होती थीं। उत्तर में कुल्ला पर्वत जहां सदैव मेघ मंडराते रहते हैं। पूर्व में हिरनी की गगनचुम्बी चोटी जो बादलों का वक्ष भेद कर ऊपर सूर्य की स्वर्गमयी गेंद से खेलती रहती है। दक्षिण में आफ़राज़ का पहाड़ जो काले २ बनों से ढका हुआ है और पश्चिम में गुरसमन्द का नग्न पहाड़ जिसके परे कस्बे की घाटी है और जिससे परे एक और ऊंचा पर्वत है जिसकी बर्फ़ ग्रीष्मकाल में भी नहीं पिघलती और जिसके परे वह छोटी सी सुन्दर घाटी है जहां राजा साहब रहते हैं, और जहां शिकारियों में से अब्दुल्ला के अतिरिक्त कोई नहीं गया।

परन्तु इस समय अब्दुल्ला के घर कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। चारों ओर वह घनी शीतल धुन्ध फैली हुई थी जो आकाश से कट २ कर बर्फ़ के गाले बनकर निस्तब्ध पृथ्वी पर गिरती जाती है। इस समय न पहाड़ दिखाई देते थे न नीचे के घर, न रुख, न नाला। पृथ्वी और आकाश पर भी एक धुन्ध छाई हुई थी और बर्फ़ के हल्के-फुल्के

कोमल गाले गिर रहे थे। चारों ओर पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई थी और कोई शब्द सुनाई न देता था और दूर कहीं से फिर सहसा तूफ़ान का थपेड़ा 'हुआऊ ऊ' करता हुआ आता और बर्फ़ के गाले अन्धाधुन्ध एक दिशा में गिरने लगते और कभी वायुमण्डल में भँवर बनाकर नृत्य करने लगते और कभी एक दिशा में जाते और कभी दूसरी दिशा में, और कभी विभिन्न दिशाओं से आते-जाते एक-दूसरे से गले मिलने लगते। और तूफ़ान का ऑरकैस्ट्रा ऊँचा हो जाता और सहसा आकर झन से रुक जाता। और तूफ़ानी थपेड़ा 'हुआऊ ऊ' का शोर मचाता दूर कहीं पर्वत-श्रेणी पर चला जाता और यहाँ बर्फ़ के गाले पुनः निरन्तर गिरते रहते और बर्फ़ ऐसे जमने लगती जैसे कोई कशमीरी युवती धरती के करघे पर श्वेत गद्दर ग़ालीचा बुन रही हो।

अब्दुल्ला का छोटा बेटा अज़ीज़ द्वार खोल कर छप्पर से आगे ढलकती हुई बर्फ़ को नीचे गिराने जा रहा था कि उसे सामने धुन्ध में नूरनशाँ का चेहरा दिखाई दिया जैसे झील की लहरों पर कमल का नव-विकसित फूल घूमता हुआ सामने आ जाए और अज़ीज़ को देखकर उल्लास से खिल उठे। अज़ीज़ उसे देखकर बर्फ़ गिराए बिना द्वार के भीतर आ गया और बकरियों को एक कोने में बाँधने लगा। नूरनशाँ ने द्वार पर आकर कहा—'मैं चश्मे तक जा रही हूँ। मेरे साथ कौन चलेगा ?"

अज़ीज़ की बहन चश्मे से पानी ले आई थी। अज़ीज़ का बड़ा भाई अमीन किसी काम में व्यस्त था। अज़ीज़ की माँ रोटी पका रही थी। बूढ़ा अब्दुल्ला आग ताप रहा था। अज़ीज़ बकरियाँ बाँधने में लगा रहा। सब लोग चुपचाप काम करते रहे मानो किसी ने नूरनशाँ को सुना ही नहीं। अज़ीज़ ने केवल एक क्षण के लिए प्रतीक्षा की। दूसरे क्षण वह द्वार पर था।

अज़ीज़ के बड़े भाई ने कहा—"बकरियाँ तो बाँधते जाओ।"

अज़ीज़ ने द्वार पर लटकते हुए बोरिये को घसीट कर अपने सिर

पर एक तिकौनी टोपी बना कर ओढ़ लिया और नूरनशाँ के साथ सीढ़ियाँ उतरने लगा।

अब्दुल्ला उठकर द्वार पर आ गया। वहाँ से उसने एक क्षण के लिए अज़ीज़ और नूरनशाँ की पीठ देखी—केवल एक क्षण के लिए। दूसरे क्षण वे एक छलावे की भांति धुन्ध में विलीन हो गए। अब्दुल्ला दृष्टि झुका कर पत्थर की सीढ़ियों पर अज़ीज़ और नूरनशाँ के पग देखने लगा जो बर्फ़ में बड़ी सुन्दरता से अङ्कित थे—अज़ीज़ के मरदाने पाँव, नूर के छोटे-छोटे ज़नाने पाँव। फिर दोनों के पग विलीन होते गए। बर्फ़ गिरती गई, पग मिटते रहे, मिट गए। अब्दुल्ला ने एक झुरझुरी सी ली और अन्दर आकर पुनः आग तापने लगा।

अज़ीज़ की माँ मकई की रोटी सेंकते हुई बोली—"आज झक्कड़ तेज़ है।"

अमीन, अज़ीज़ का बड़ा भाई, हँसा।

अज़ीज़ की बहिन विस्मित होकर उसकी ओर ताकने लगी। घर में बड़ा भाई किसी को भी प्रिय न था। सब अज़ीज़ को चाहते थे।

बहन की निगाहें देखकर अमीन लज्जित-सा हो गया। फिर उसने अपनी बहन से बड़े कटु स्वर में कहा, "उठकर बकरियाँ तो बाँध दे। इस तूफ़ान में एक बकरोटा भी बाहर निकल गया तो अज़ीज़ का बच्चा ही उसे ढूँढकर लाएगा। मैं तो बाहर जाऊँगा नहीं।"

सहसा तूफ़ान का एक थपेड़ा बड़े वेग से अन्दर आया, उसने सारे घर में चक्कर चलाया, आले में रखा हुआ दीया नीचे गिराया, दो अलग २ रखी हुई मटकियों को आपस में टकराया, चूल्हे में धुआँ ही धुआँ किया और फिर प्रस्थान करते हुए द्वार के पट बड़े वेग से बन्द करता हुआ 'हुआऊ ऊ' करता हुआ भाग गया। उसका विलीन होता हुआ स्वर सुदूर पर्वत-श्रेणियों की ओर जाता हुआ प्रतीत हुआ।

अब्दुल्ला ने गरज कर कहा—"यह द्वार किसने खोला था?"

अज़ीज़ का भाई बोला—"अज़ीज़ ने।"

"तो फिर तूने बन्द क्यों नहीं किया ?" अब्दुल्ला ने और गरज कर कहा। "हज़ार बार कहा है दरवाज़ा बन्द रक्खा करो। यह आफ़राज़ के पहाड़ों से आया हुआ तूफ़ान है। द्वार बन्द नहीं रखोगे तो एक दिन छप्पर तक उखाड़ कर ले जायगा। अब इस तूफ़ान में वह हराम-ज़ादी पानी भरने गई है। मैं पूछता हूँ इस बर्फ़ीले झक्कड़ में प्यास किसे लगती होगी ?"

अज़ीज़ की माँ कोमल स्वर में बोली, "उसके घर में पानी न होगा।" नूरनशाँ उसे बहुत पसन्द थी।

"मैं सब जानता हूँ, ये सब बहाने हैं।"

अज़ीज़ की माँ ने एक मधुर उसास भर कर कहा, "हाँ, अब इन दोनों का निकाह कर देना चाहिए।"

अज़ीज़ की अविवाहित बहन के बड़े २ नेत्रों की पुतलियाँ फैलती गईं और वह देर तक चूल्हे में जलते हुए लाल अँगारों को देखती रही। अज़ीज़ के बड़े भाई ने क्रोध से दाँत पीस लिये। वह भी अविवाहित था और नूरनशाँ से प्रेम करता था जो अज़ीज़ से प्रेम करती थी जो उसका छोटा भाई था। वह द्वार पर जाकर खड़ा हो गया जहाँ केवल धुन्ध ही धुन्ध दिखाई पड़ती थी।

उस अन्धे तूफ़ान की धुन्ध में नूरनशाँ और अज़ीज़ के पग सीढ़ियाँ उतरते जा रहे थे। यह संकटपूर्ण फैलता हुआ पथरीला रास्ता, जो बल खाता हुआ नीचे जा रहा था, कई भयानक मोड़ों और खाइयों के भयावने किनारों से गुज़रता था। इस समय धुन्ध और बर्फ़ में चलना और भी कठिन हो रहा था। हर पग फूँक २ कर रखना पड़ता था। बर्फ़ के गाले कभी तो आँखों में घुस जाते, कभी नाक में, कभी मुँह में। ऐसी स्थिति में बात क्या हो सकती है ? फिर भी नूर और अज़ीज़ अपने शरीरों के स्पर्श की मूक भाषा में बातें किये जा रहे थे। यहाँ वे अलग-अलग चल रहे थे। यहाँ इस मोड़ पर अज़ीज़ ने नूर का हाथ थाम लिया। इस स्थान पर नूर ठहर गई और उसने अज़ीज़ के कन्धे पर

अपना हाथ रख दिया। यहाँ पर वह गहरी खाई आई थी जहाँ अफ़-ज़ल शिकारी गिर कर मर गया था। नूर ने सिहर कर साँस अन्दर खींच ली और अज़ीज़ ने दृढ़ता से अपना हाथ उसकी कमर में डाल दिया और उसे घुमाकर नीचे ले आया। यह मार्ग सुगम था। यहाँ दोनों अलग-अलग होकर चलने लगे और नूर एक नाचती हुई हिरनी की भांति चौकड़ियाँ भरती हुई तीव्रता से नीचे उतर गई। फिर आगे बढ़कर रुक गई, अज़ीज़ ने हौले से उसे थाम लिया। उँगलियों के स्पर्श से बर्फ़ में दबी हुई, निद्रित मधुर भावनाएँ जाग्रत हो उठीं और एक लौ की भांति भड़क उठीं जैसे चक्रमाक़ के पत्थरों से चिंगारी प्रस्फुटित होती हो। नूर ने अपना हाथ अलग कर लिया। अब फिर बर्फ़ उसी प्रकार गिर रही थी, उसी प्रकार चलते २ वे चट्टानों की उस खोह में पहुँच गए जहाँ चश्मे का उद्गम स्थान था। यहाँ पहुँच कर नूर ने एक लम्बी साँस भर कर घड़ा सिर से उतार कर चश्मे के किनारे रख दिया। अज़ीज़ ने कहा—"ऐसे तूफ़ान में आने की क्या आवश्यकता थी?"

नूरनशाँ ने कहा—"दो दिन से तुम्हें देखा नहीं था। "नूरनशाँ के नेत्रों में शिकायत थी। उसके अधरों के कोने में कम्पन था।

अज़ीज़ का स्वर अत्यन्त कोमल हो गया। वह बोला, "तुम्हारे बालों में बर्फ़ है।"

नूर के अस्त-व्यस्त केशों में बर्फ़ थी, उसके नाज़ुक ठिठुरते हुए कन्धों पर बर्फ़ थी। उसकी ओढ़नी की सलवटों में बर्फ़ थी और उसके उज्ज्वल श्वेत मुख पर बर्फ़ थी। अज़ीज़ ने उसके केशों से बर्फ़ गिराई, उसके नाज़ुक कन्धों से बर्फ़ गिराई, उसकी ओढ़नी की सलवटों से बर्फ़ गिराई और फिर नूर एक कपकपाती हुई फ़ाख़ता की भांति उसकी बलिष्ठ भुजाओं में आ गई और उसके कन्धे से लगकर बड़ी क्षीण वाणी में कहने लगी—"अमीन कहता है अगर मैंने तुम से शादी की तो वह हम दोनों को गोली मार देगा।"

अज़ीज़ की भुजाएँ नूर के कन्धों पर कस गईं। उसने अत्यन्त

विश्वास और निश्चिन्तता से कहा—"तुम घबराओ नहीं। गोली मारना मैं भी जानता हूँ।"

अज़ीज़ ने इतना कहकर नूरनशाँ को चूम लिया—एक बार, दो बार। तीसरी बार जब वह उसे चूम रहा था तो सहसा उनके कानों में किसी के चहकने का शब्द आया। दोनों घबराकर अलग २ हो गए।

अब फिर निस्तब्धता थी।

"कौन था ?"

कोई नहीं था। चारों ओर धुन्ध थी और निस्तब्धता थी और सन्नाटा था और वे दोनों अकेले थे।

"तुमने आवाज़ सुनी ?" अज़ीज़ ने पूछा।

"हाँ" नूर ने काँपते हुए कहा।

"कोई नहीं था।" अज़ीज़ ने एक दीर्घ विराम के पश्चात् कहा। "हमारा भ्रम था।" और इतना कहकर उसने नूरनशाँ को फिर अपनी भुजाओं में ले लिया। सहसा फिर कोई चहका।

अरे !

एक छोटी-सी ठिठुरती हुई गुलदुम अपने पंख फड़फड़ाती हुई नूरनशाँ के सिर पर आ कर बैठ गई और नूरनशाँ घबरा कर और चीत्कार करती हुई अज़ीज़ से अलग हो गई। अज़ीज़ ने उसे थाम लिया।

"घबराओ नहीं, यह तो गुलदुम है।" अज़ीज़ ने गुलदुम की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा।

गुलदुम फिर अपने कोमल कंठ से चहकी। वह नूरनशाँ के सिर से उड़ी नहीं, वहीं बैठी रही। अज़ीज़ ने उसे अपने हाथों में ले लिया। गुलदुम उसके हाथों में आ गई।

नूरनशाँ बोली "हाय! कितनी छोटी-सी गुलदुम है, कितनी प्यारी! इस मौसम में कहाँ से आ गई यहाँ ?"

गुलदुम ने कहा, "चूँ चूँ चिर चिर चिर चूँ चूँ।"

"गाती है," नूरनशाँ ने हँसकर कहा।

"गाती नहीं है, रोती है," अज़ीज़ ने कहा, "बेचारी को भूख लगी है।"

नूरनशाँ ने कहा, "मैं इसे घर ले जाऊँगी। लो इसे पकड़ लो, मैं पानी भर लूँ।"

नूरनशाँ ने पानी भर कर घड़ा सिर पर रख लिया। अज़ीज़ ने अपनी मुट्ठी में गुलदुम को लिया और वे दोनों लौट गए। गुलदुम के पाने की उसे इतनी प्रसन्नता थी कि नूर बिना थके सारी चढ़ाई चढ़ गई और कहीं पर साँस लेने के लिये भी नहीं रुकी। अपने घर में पहुँच कर उसने घड़ा उतार कर धरती पर रखा और फिर तुरन्त मुड़कर अज़ीज़ से कहने लगी, "लाओ हमारी गुलदुम।"

"तुम्हारी कैसे हो गई? वाह, गुलदुम तो मेरी है" अज़ीज़ ने कहा।

"नहीं नहीं," नूरनशाँ ने ठिनकते हुए कहा, "गुलदुम हमें दे दो, गुलदुम हमारी है।"

"नहीं हमारी है।"

नूरनशाँ ने कहा, "गुलदुम हमारी है, क्योंकि यह पहले हमारे सिर पर आकर बैठी थी।"

अज़ीज़ ने कहा, "इसे रास्ते भर तो उठा कर मैं लाया हूँ, अपनी मुट्ठी में गरम रखा है इसे, नहीं तो रास्ते ही में मर गई होती। मैंने इसकी जान बचाई है, गुलदुम मेरी है।"

"नहीं मेरी है।" गुलदुम पर झपटते हुए नूरनशाँ बोली।

नूरनशाँ की माँ ने कहा, "ऐसे फैसला नहीं होगा। तुम गुलदुम को आले में रख दो, फिर गुलदुम को बुलाओ। गुलदुम जिसके पास चली जाएगी, उसी की है।"

अज़ीज़ ने गुलदुम आले में रख दी।

नूरनशां ने कहा, "पहले मैं बुलाऊँगी इसे।"

"बहुत अच्छा! तुम ही बुलाओ।"

नूरनशाँ ने हाथ फैला कर अत्यन्त मधुर कण्ठ से कहा, "आजाओ, ची ची ची मेरी नन्ही-मुन्नी गुलदुम ! आजाओ, ची ची ची ।"

गुलदुम आले में मौन बैठी रही ।

जब नूरनशाँ सारे यत्न करके परास्त हो गई तो धीरे से बोली—"अब तुम ही बुला लो इस कलमुँही को ।"

अज़ीज़ ने सीटी बजाई । गुलदुम फुर्र से उड़ कर उसके कन्धे पर आ बैठी । अज़ीज़ हँसने लगा ।

नूरनशाँ के नेत्रों में अश्रु-कण उभर आए । बोली, "ले जाओ इसे, और फिर कभी मुझे अपना मुँह न दिखाना । अभी ले जाओ इसे, लाल २ दुमसड़ी को ।"

अज़ीज़ ने हँसते २ गुलदुम नूरनशाँ के सिर पर रख दी । बोला—"माल मेरा है, पर रहेगा तुम्हारे पास, क्योंकि मेरे घर की मालकिन तुम होने वाली हो ।" नूरनशाँ शर्मा गई । अज़ीज़ हँसते हुए बाहर निकल गया ।

अज़ीज़ के साथ अब कोई न था । इसलिए अब वह सुगमता से चढ़ाई चढ़ता जा रहा था । चढ़ाई चढ़ना वैसे भी उतराई से आसान होता है । वह निश्चिन्तता से सीटी बजाता, इधर-उधर देखता चला जा रहा था । अगले मोड़ पर गहरी खाई का किनारा था जहाँ पाँव तनिक भी इध-उधर हो जाए तो मनुष्य आठ हज़ार फुट गहरे खड्ड में गिर जाए । मोड़ पर पहुँच कर अज़ीज़ ने अपने पाँव सम्भाल लिए । आगे बढ़ा तो रुक गया । उसके ऊपर धुन्ध में लिपटा हुआ एक आदमी खड़ा था !

"कौन है ?" अज़ीज़ ने ललकार कर पूछा ।

वह आदमी एक पग नीचे उतरा । अज़ीज़ ने देखा यह उसका बड़ा भाई अमीन था ।

"क्या........." परन्तु अज़ीज़ अपना वाक्य पूरा न कर सका । अमीन ने उछल कर अज़ीज़ पर आक्रमण कर दिया और वे दोनों

वहीं चट्टान पर गुथ गए और बड़ी सावधानी से और अपने शरीर का समस्त बल लगाकर लड़ने लगे।

अमीन शनैः २ अज़ीज़ को खाई के किनारे की ओर ले जा रहा था। अज़ीज़ चट्टान से जोंक की भाँति चिमट कर अपनी दोनों भुजाओं की पूरी शक्ति से उसका मार्ग रोके हुए था। दोनों की साँसें धोंकनियों की भाँति चल रही थीं। फिर बर्फ़ अंधाधुन्ध गिर रही थी और वे दोनों अपनी २ जगह पर जमे हुए एक इञ्च इधर-उधर न होते थे। सहसा अज़ीज़ के पंजे ढीले हो गए। और वह एक २ इञ्च करके खाई की ओर घसीटा जाने लगा। एक इञ्च . दो इञ्च...... तीन इञ्च......चार इञ्च। अज़ीज़ के मस्तक पर पसीने की बूँदें झलक आईं। अमीन का चेहरा उसके बिल्कुल निकट था और उस समय वह अज़ीज़ को एक भेड़िये की भाँति गुर्राता हुआ प्रतीत होता था। सहसा उसकी यह पाशविक मुद्रा देख कर अज़ीज़ की भुजाओं में एक नई शक्ति का संचार हो उठा। उसे अपने पैरों की ओर एक चट्टान के निकले हुए किनारे का सहारा मिल गया। सहारा लेकर अज़ीज़ ने जो बल लगाया तो अमीन वहीं तड़प कर औंधा हो गया। अब अज़ीज़ उसके ऊपर था और अमीन नीचे। इन दोनों के नीचे गहरी खाई थी, एक इञ्च..... दो इञ्च.... तीन इञ्च . ...चार इञ्च छः ..इञ्च ......आठ इञ्च। अब अमीन का सिर और उसकी बाँहें नीचे खाई के गहरे शून्य में काँप रहे थे।

अमीन चीखा—"मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो, खुदा के लिए।"

अज़ीज़ ने फिर ज़ोर लगाया। अमीन अब धड़ तक खाई में लटक गया। अब उसने प्रतिरोध करना बन्द कर दिया। अब वह ज़ोर २ से चिल्ला रहा था—"मैं तुम्हारा भाई हूँ, अज़ीज़! तुम्हारा सगा भाई, तुम्हारा बड़ा भाई। खुदा के लिए मुझे माफ़ कर दो।"

"सच कहते हो?" अज़ीज़ ने कठोरता से पूछा, "फिर कभी नूरनशाँ की ओर बुरी दृष्टि से तो न देखोगे?"

"सच कहता हूँ, नहीं देखूँगा।"

"क़सम खाओ।"

अमीन ने क़सम खाई। फिर भी वह देर तक खाई में लटकता रहा। अन्त में अज़ीज़ ने उसे पीछे खींच लिया। अमीन देर तक बर्फ़ पर औंधे मुहँ पड़ा रहा, लम्बे २ साँस लेता रहा। फिर अज़ीज़ ने उसे सहारा देकर खड़ा किया और उस से कहा, "तुम आगे चलो। मैं तुम्हारे पीछे २ आता हूँ। मगर देखो! यदि तुमने एक बार भी पलट कर देखा या रुके तो मैं तुम पर आक्रमण कर दूंगा।"

अमीन सीधा घर चला गया। और उसके पीछे २ अज़ीज़ ने घर में प्रवेश किया। अब्दुल्ला उन दोनों की ओर सन्देहभरी दृष्टि से देखकर बोला—"मैं तुम दोनों को गोली मार दूंगा, हरामज़ादो! मालूम होता है तुम दोनों फिर लड़े हो।"

"नहीं अब्बा जी", अज़ीज़ सिर झुकाकर बोला।

दो दिन और दो रात के पश्चात् तूफ़ान थमा। शिकारी देवदार के पौधों को देखने गए। देवदार के बहुत से पौधे बर्फ़ से ढक गए थे। कइयों की केवल फुंगियाँ दिखाई देती थीं। जो पौधे बड़े थे उनकी टहनियों और हरे झूमरों पर चाँदी ऐसी बर्फ़ की नाजुक २ कोरें और गोटें टकी हुई थीं। वृक्षों ने नये वस्त्र पहने थे और अब वे सूर्य के प्रकाश में सीधे खड़े, गर्व से सिर ऊँचा किए श्वेत उजले फलदार वस्त्र पहने प्रथम हिम-पात के उन्मादपूर्ण उल्लास में प्रसन्नता से चमक रहे थे।

परन्तु देवदार की पनीरी को बहुत क्षति पहुँची थी। जो पौधे गिर गए थे उनका तो ख़ैर अब क्या हो सकता था, परन्तु जो पौधे बर्फ़ में दबे थे, गिरे न थे और वे पौधे जिनके गले २ तक बर्फ़ आ गई थी, उन्हें बचाना तो आवश्यक था। इसलिए दिन भर शिकारी और उनके परिवार के लोग पौधों के चारों ओर से बर्फ़ हटाते रहे। छोटे २ बालक उस बर्फ़ की मूर्तियाँ बनाते रहे। वे पहले बर्फ़ का

एक गोला बनाते और फिर उसे बर्फ़ पर चलाना आरम्भ करते। जैसे २ बर्फ़ का गोला चलता जाता वह रास्ते की बर्फ़ पकड़ता जाता और बड़ा होता जाता और उसका चलना कठिन होता जाता। फिर एक समय ऐसा आता कि सब लड़के-वाले मिलकर भी उसे आगे न धकेल सकते। तब वे इस गोले का सिर, मुहँ, कान और हाथ-पाँव बनाते। उसके सिर पर देवदार की हरी झालरों वाली पत्तियों का ताज रखते। आँखों के स्थान पर दो बड़े २ काले कंकड़ रख देते और होठों में सिग्रेट के तौर पर एक छोटी सी टहनी का टुकड़ा दबा देते।

बालकों ने एक ऐसा ही नया गोला बनाया। जब वह बन गया तो सब ने ताली बजाई और एक-दूसरे के हाथ में हाथ दिये उसके चारों ओर नाचने लगे—"आ हा हा, राजा साहब आ गए, राजा साहब आ गए।"

बहुत समय बीता, कोई दो या तीन वर्ष हुए राजा साहब यहाँ शिकार को आए थे। उस समय लड़कों ने उनके मुँह में एक सफेद रंग की नलकी जैसी चीज़ देखी थी जिससे धुआँ निकलता था। हुक्के से सब लोग परिचित थे परन्तु सिग्रेट लड़कों ने अपने गाँव में प्रथम बार देखा था। वे बड़े अचम्भे से उसे ताकते रह गए थे।

थोड़ी देर नाचने के पश्चात् बच्चे दो टोलियों में विभाजित होने के लिये पुगने लगे। वे तीन २ की टोलियों में खड़े होकर एक-दूसरे के हाथ में हाथ देकर हाथों को झुलाते और फिर अपने हाथों को अलग करते हुए अपनी एक हथेली दूसरी हथेली पर रख देते। वायु-मण्डल में एक साथ ताली बजने की सी आवाज़ गूँजती और फिर वह लड़का या लड़की जिसकी सीधी हथेली पर उलटा हाथ रखा होता या सीधी हथेली पर सीधा हाथ रखा होता परन्तु इस प्रकार रखा होता कि दूसरे लड़कों के हाथ उसी प्रकार न रखे होते, वह पुग जाता और राजा साहिब की मूर्ति अर्थात् बर्फ़ के गोले से कोई डेढ़ सौ गज़ परे खड़ा हो जाता और उस पर मारने के लिए बर्फ़ के छोटे २ गोले बनाने लगता।

जब सब बालक दो टोलियों में विभाजित हो गए, एक राजा साहब के रक्षकों की और दूसरी उनके आक्रमणकारियों की, तो बर्फ़ के बहुत से गोले तैयार किए गए। फिर यह चुनने के लिए कि कौन से तीन लड़के मूर्ति के दाएँ, बाएँ और सम्मुख खड़े हों, अक्कड़-बक्कड़ की गिनती गिनी गई। अक्कड़ शब्द से पहला लड़का गिना जाता। अन्तिम शब्द जिस लड़के पर आता उसे मूर्ति के सामने खड़ा होना पड़ता। इस प्रकार तीन बार किया जाता क्योंकि तीन लड़कों का निर्वाचन करना होता था। सब लड़के एक पंक्ति में खड़े थे। दो लड़के चुन लिए गए थे। वे मूर्ति के दाएँ-बाएँ जाकर खड़े हो गए और उन्होंने बर्फ़ के गोले अपने हाथों में उठा लिए। तीसरे लड़के के सामने आते ही बर्फ़ के गोलों का मुकाबला होता था। एक लड़के ने लड़कों को एक-एक करके उँगली से छूते हुए कहना आरम्भ किया :—

अक्कड़, बक्कड़, भम्बा भो
अस्सी, नब्बै, पूरे सौ
सौ कलूटा
तीतर मोटा
चल मदारी
पैसा खोटा।

"खोटा" शब्द उच्चारित होते ही तीसरा लड़का उछल कर मूर्ति के सामने आ गया और दोनों ओर से गोलाबारी आरम्भ हुई। बहुत देर तक गोलाबारी होती रही परन्तु अन्त में विजय राजा साहब के रक्षकों की हुई। मूर्ति पर केवल तीन गोले लगे थे परन्तु मूर्ति उसी प्रकार खड़ी रही, केवल उसका ताज गिर गया था। अब बालक इस खेल को छोड़कर बर्फ़ का गढ़ बनाने में लग गए और बच्चियाँ बर्फ़ के नन्हे २ घरौंदे बनाने लगीं और बर्फ़ की मटकियाँ सिर पर रखे चश्मे से पानी लाने लगीं। और बर्फ़ का चूल्हा बनाकर उस पर बर्फ़ का तवा रख कर बर्फ़ की रोटियाँ बनाने लगीं।

और जब सूर्य अस्ताचल में चला गया तो शिकारियों ने अपना काम आधे से अधिक समाप्त कर लिया। पौधों के किनारे-किनारे बर्फ़ की एक ऊँची दीवार खड़ी हो गई थी। अब वे दूसरे दिन काम करने के लिए विदा हुए। रात्रि के समय चौकीदारी के लिए वे अज़ीज़ को नियुक्त कर गए। अज़ीज़ रात को खाना खाकर और राइफल हाथ में लेकर और कारतूस जेब में डालकर पौधों के बीच बनी हुई मचान की ओर चला गया। वह रात अत्यन्त सुहावनी थी। प्रथम हिमपात की रात में यदि चाँदनी खिले तो अति सुन्दर होती है। ढलान की सीढ़ियों पर बर्फ़ चमक रही थी और कहीं २ उस चमकती हुई बर्फ़ पर घरों और चट्टानों की लम्बी २ छाया पड़ रही थी। दूर तक चारों ओर पर्वतों की निस्सीम श्रेणियों पर एक अद्भुत नीलिमापूर्ण धवलता फैली हुई थी। हवा में जंगल की हल्की-सी सुगन्ध थी और तारे बर्फ़ के गाले थे जो रात की ओढ़नी में आकाश की झील से छलक कर गिर पड़े थे और झम-झम चमक रहे थे और अज़ीज़ को इतने निकट लगते थे जैसे वह उन्हें अपने हाथ से छू सकता है। अज़ीज़ को नूरनशाँ की ओढ़नी का ध्यान हो आया। वह मुस्कुरा पड़ा। उसने अपनी फ़रग़ल को भली प्रकार अपने चारों ओर लपेट लिया और चट्टान की सीढ़ियाँ चढ़ता गया और नूरनशाँ के घर के समीप पहुँच उसके पग सहसा रुक गए। घर में प्रकाश न था, शायद सब सो गए थे। अज़ीज़ देर तक वहाँ खड़ा रहा और फिर वह एक चट्टान के पीछे छिप गया और दुबक कर भेड़िये की बोली बोलने लगा। वह इतने पास से बोल रहा था, परन्तु इस प्रकार बोल रहा था कि उसकी आवाज़ निकट से नहीं वरन् दूर के जंगल से आती प्रतीत होती थी जैसे किसी हिमाच्छादित भट के किनारे कोई एकाकी विरही भेड़िया अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में खड़ा चन्द्रमा की ओर देख रहा हो। परन्तु नूरनशाँ के घर का द्वार नहीं खुला और कोई बाहर नहीं आया। अज़ीज़ थोड़ी देर प्रतीक्षा करके वहाँ से चल दिया और फिर चश्मे के पास से गुज़रता हुआ नीचे पौधों के ज़ख़ीरे के

पास पहुँच गया और मचान पर चढ़ कर बैठ गया। उसने राइफ़ल में कारतूस भरे, मचान में बिछे हुए घास के बिछौने को ठीक किया और कम्बल ओढ़कर बैठ गया। उसे ज्ञात था कि उधर किसी जंगली जानवर का आना असम्भव ही सा है। आरम्भ में जंगली जानवरों ने पौधों को अवश्य ही क्षति पहुँचाई थी परन्तु जब कुछ जानवर बन्दूक की गोलियों का शिकार हुए तो उन्होंने इधर का आना-जाना बहुत कम कर दिया। फिर भी कभी २ कोई भूला-भटका जन्तु इधर आ निकलता था। फिर भी पौधों की रखवाली तो आवश्यक थी।

जब अज़ीज़ को नींद आने लगी तो वह हौले २ गाने लगा। हौले-हौले गाते २ वह ज़ोर से गाने लगा ताकि जंगल के समस्त वृक्ष और पशु-पक्षी और बर्फ़ के समस्त कण और आकाश के समस्त तारे और कबीले के समस्त प्राणी उसके विरह-ग्रस्त प्रेम का गीत सुन लें। और जब वह गाते २ थक गया तो बंजली बजाने लगा और देर तक उसे बजाता रहा। फिर अन्त में जब उसे बंजली की स्वर-लहरी नीरस प्रतीत होने लगी तो वह सहसा और उदास हो गया और मुँह से ज़ोर २ से साँस निकालने लगा।

साँस मुँह से निकलते ही वायु में धूआँ बन जाता और ऐसे अधर लटक जाता जैसे कोई जादूगर सफेद रूमाल को हवा में अधर लटका दे। फिर यह धूआं बहुत ही धीरे-धीरे हवा में घुल जाता था। वह देर तक इसी तरह करता रहा। सहसा उसने मचान के नीचे सरसराहट का अनुभव किया। उसने झुककर देखा, नूरनशाँ थी। उसने वहीं ऊँची मचान से छलाँग लगा दी और उसे अपनी भुजाओं में ज़ोर से दबोच लिया और उसके बालों, उसके कन्धों, उसके कपोलों, उसकी भवों और उसके अधरों को चूमने लगा। नूरनशाँ बेसुध सी हो गई, उसकी आँखें मुँदने लगीं और उसका शरीर बर्फ़ के गाले की भाँति हलका हो गया। उसने साँस रोक कर बड़ी कठिनता से अपने आपको अज़ीज़ से

अलग किया और उसकी ओर देखकर बड़े प्यार से और बड़ी शिकायत से कहने लगी—

"हाय, तुम कितने बुरे हो। मैं तो तुमसे बातें करने आई थी और तुम··· ····" वह रूठकर उससे अलग खड़ी हो गई और अज़ीज़ ने फिर दोनों हाथ उसकी कमर में डाल दिये और उसे बहुत होले से अपनी ओर खींच लिया और बहुत लज्जित होकर अपनी भूल स्वीकार की। और नूरनशाँ हँस पड़ी और उसने अपनी आँखें उसकी आँखों में डालकर अपनी छोटी उँगली के नाखून से अज़ीज़ की ठोड़ी को छू लिया और फिर आँखें झुकाकर कन्धे से लग गई और वे दोनों देर तक उसी प्रकार खड़े २ बातें करते रहे। सामने ढलवान पर एक सुन्दर सींगों वाला हिरण आ खड़ा हुआ और उन्होंने उसे नहीं देखा और हिरण अपने सींग इधर-उधर हिलाता हुआ वायु को सूँघता रहा। और फिर वह चीड़ के एक वृक्ष से लगकर अपनी खाल सहलाने लगा। फिर ब्याड़ के वृक्षों के तनों में से गुज़रती हुई एक सुन्दर हिरणी आई और काली छायाओं और चाँदनी की झीलों और बर्फ़ के गद्दर गलीचों पर से गुज़रती हुई, झिझकती हुई, लजाती हुई, देवदार के एक छोटे से पौधे के पास खड़ी हो गई और········इन दोनों ने उसे भी नहीं देखा और फिर बारहसींगे ने वायु को सूँघा और वह गर्वपूर्ण, अद्भुत ठाठ से टहलता-टहलता हिरणी के पास चला गया और अपनी गर्दन उसकी मखमल ऐसी गर्दन से सहलाने लगा। और फिर वह दोनों हिरण बिना किसी आहट के चौंक पड़े और चौकड़ियाँ भरते हुए नीचे जङ्गल में चले गए। उस समय अज़ीज़ और नूरनशाँ ने उन्हें देखा और नूरनशाँ ने मीठी आह भर कर कहा, "हिरणों का जोड़ा था।" और अज़ीज़ ने प्यार से उसकी नाक सहला दी। फिर उसने ज़ोर से साँस भर कर उसे बाहर निकाला और एक श्वेत धुन्ध हवा में तैर उठी। इस पर नूरनशाँ ने ज़ोर लगाकर अपना साँस बाहर निकाला जो अज़ीज़ के साँस से कुछ आगे निकल कर हवा में जम गया। इस प्रकार थोड़े

समय तक वे हवा में साँसों के रूमाल उड़ाते रहे और एक-दूसरे से होड़ लगाते रहे। सहसा कहीं से एक गोली ठाएं से चली और उनके समीप बर्फ़ की मूर्ति को भेदती हुई निकल गई। अज़ीज़ तुरन्त पृथ्वी पर गिर गया और उसने झटके से नूरनशाँ को भी नीचे गिरा लिया और वे दोनों बर्फ़ की मूर्ति के पीछे दुबक गये ....।

दूसरी गोली चली और बर्फ़ की मूर्ति का सिर उड़ गया। अज़ीज़ ने नूरनशाँ से कहा—"तुम दुबक कर ढलवान की ओर जाओ। मैं मचान पर चढ़ने का प्रयत्न करता हूँ, मेरी राइफल ऊपर है।" वह भूमि पर घिसट २ कर मचान के निकट पहुँच गया जो वृक्षों की ओट में थी और मचान पर चढ़ कर अपनी राइफल लेकर नीचे उतरा। कई क्षण बीत गये परन्तु फिर कोई गोली नहीं चली। अज़ीज़ ने गोली आने की दिशा का अनुमान लगाकर चट्टानों की ओर गोली चलाई। परन्तु कोई उत्तर नहीं आया। अज़ीज़ ने चिल्लाकर कहा—"गोली चलाने वाले! तुझ में साहस है तो सामने आजा। देख मैं यहां खड़ा हूँ। आ सामने होकर मुकाबला कर लें।" और अज़ीज़ यह कहते ही बर्फ़ पर सीधा खड़ा हो गया। अज़ीज़ ने चट्टानों की ओट से एक परछाई को भागते हुए देखा। परन्तु सामने कोई नहीं आया, क्योंकि सन्मुख खड़ा होकर अज़ीज़ का सामना करना अपनी मौत को निमंत्रण देना था।

गुलदुम को आये हुये दस दिन ही बीते थे कि अज़ीज़ और नूरनशाँ का विवाह हो गया और गांव वालों ने नूरनशाँ के घर के नीचे, जिधर से चश्मे को रास्ता जाता था, एक घर बनाया—उन दोनों के निवास करने के लिये। गीली मिट्टी को दो बड़े तख्तों पर थोप कर दीवार बनाई गई और नीचे रुख से सन्थे की झाड़ियां काट-काट कर चीड़ की बल्लियों पर छत बनाई गई और उसके ऊपर लाल चट्टानों की बजरी बिछाई गई और घर को अन्दर से खड़िया मिट्टी से पोत दिया गया। और फिर अज़ीज़ की माँ ने चूल्हा बनाया और अपने हाथ से नये घर

में पीली मकई की सुनहरी रोटियां, मक्खन में गूंध कर वर-वधु को खिलाई। नूरनशाँ की माँ ने आले में दिया जला कर रखा और नये घर के द्वार पर जंगली अगर के सुगन्धित पत्तों के हार लटकाए और वर-वधु की बलाएं लेती हुई वहां से विदा हुई। अब घर में अज़ीज़ और नूरनशाँ अकेले थे। आले में दिया जल रहा था। दूसरे आले में गुलदुम बैठी थी। घर का द्वार खुला था परन्तु उन्हें पता था कि आज की रात वे उसे बन्द न कर सकेंगे क्योंकि आस-पास की चट्टानों पर और चट्टानों के पीछे चंचल, नटखट लड़कों और लड़कियों की टोलियाँ बैठी हुई हैं। अगर उन्होंने द्वार बन्द किया तो वे चिल्लाकर आकाश सिर पर उठा लेंगे और शायद द्वार ही तोड़ डालें।

नूरनशाँ गुलदुम को अपने हाथ में लिये द्वार पर आगई और अपनी हथेली पर मकई का चूरमा रख कर उसे खिलाने लगी। फिर धीरे से अज़ीज़ भी वहीं आगया और द्वार के दूसरे पट से लग कर खड़ा हो गया। उनके पीछे प्रकाशमान दीपक था और सामने खुला आकाश। द्वार पर जंगली अगर की सुगन्ध थी। नूरनशाँ के नेत्रों में एक नूतन ज्योति विद्यमान थी और जब वह गर्दन न्योढ़ा कर अज़ीज़ की ओर निहारती थी तो उसकी चोटी में गुंथी हुई कांच की लड़ियां झन-झन करके बजने लगती थीं। सहसा नूरनशां अज़ीज़ की ओर देख कर हंस दी और उसने अपने होंट गुलदुम की चौंच से मिला दिये। सहसा कोई चट्टानों के पीछे से "चांद और सिपाही" का गीत गाने लगा। लड़के सिपाही के प्रश्न सुनाने लगे और लड़कियां चांद का उत्तर बताने लगीं और उनके मीठे बोलों, व टप्पों में सारी रात बीत गई और अज़ीज़ और नूरनशाँ को यह भी पता न चला कि वह कब तक गीत सुनते रहे, और जागते रहे और कब सोए। हां, उन्हें इतना ज्ञात था कि प्रातःकाल जब वह जागे तो सूर्य की किरणें उनके चेहरे पर पड़ रही थीं और गुलदुम नूरनशाँ के सिर पर अपने पंख फैलाए उसे हल्की हल्की चौंचें मार रही थी और गा-गाकर जगा रही थी।

आज उन्हें 'समाधि' पर जाना था। इसलिये नूरनशाँ और अज़ीज़ बहुत शीघ्रता से तैयार हो गये। नूरनशाँ ने बर्तन मांझ कर अलग रख दिये और चूल्हे में आग सुलगा कर लकड़ियां बाहर निकाल लीं और अंगारों को राख में दबा दिया। गुलदुम को दाना खिला कर उसे अच्छी तरह प्यार किया और घर का द्वार बन्द करके अपने पति के साथ प्रथम बार 'समाधि' को चली। समाधि रुख के पास एक पुराने चिनार की छाया में पत्थरों के एक चबूतरे पर स्थित थी। यह किस वली-अल्ला की समाधि थी इसका किसी को पता न था। यहां कोई मौलवी भी न रहता था। टूटी-फूटी समाधि के झाड़ों पर और चिनार के तने के नीचे उगने वाली छोटी २ झाड़ियों से कपड़े की छोटी पोटलियां ग़रीब, अनजान देहातियों की सैंकड़ों इच्छाओं और आकांक्षाओं को अपने वक्ष में लिये लटक रही थीं। यह पोटली अफ़ज़ल की थी जिसका विवाह बेगमां से न हो सका। यह पोटली गुलामअली की थी जिसके आज तक कोई लड़का न हुआ था।

यह पोटली जेरां की थी जिसके पति को शेर ने घायल कर दिया था। जेरां का पति स्वस्थ न हुआ था परन्तु पोटली अभी तक लटक रही थी और यह पोटली खुलकर ज़मीन पर गिर पड़ी थी और इस प्रकार धूल में मिल गई थी कि कोई कह न सकता था कि यह किस की पोटली है।

इन पोटलियों में कैसी-कैसी आकांक्षाएँ थीं, कैसे २ अरमान, खुशियां जिनकी सुगन्ध आकाश तक फैली हुई थी, आंसू जो मोतियों जैसी चमक रखते थे—अरमान जो अधूरे रह गए, उमंगें जिन्हें मृत्यु अपने साथ ले गई, आशाएँ जो बर्फ़ के गालों की भांति पृथ्वी में समा गईं। इन्सान मर जाते हैं परन्तु उनकी खुशबूएं यादों की छोटी २ पोटलियों में रह जाती हैं। फिर एक दिन यह पोटलियां भी खुल जाती हैं और इनकी सुगन्ध हवा में, आकाश में, और धरती के गर्भ में समा जाती है। और जब नये मानव का जन्म होता है तो वह अपने साथ

नई सुगन्ध, एक नई खुशी, एक नई उत्कंठा लाता है—पहिले से अधिक सुन्दर, सूक्ष्म, कोमल। और जीवन इन नव पल्लवों में विकसित होकर बोल उठता है—देख लो, देख लो वसन्त अनन्त है, वसन्त अनन्त है।

अज़ीज़ और नूर समाधि से खुशी २ लौटे। रास्ते में अपने भविष्य की चर्चा करते हुये, गीत गाते हुए, चढ़ाई चढ़ते हुए चले आ रहे थे कि एक ऊंचे पर्वत के वृक्ष पर अज़ीज़ को एक रतगल्ला नज़र आया। अज़ीज़ ने राइफल सीधी की परन्तु नूर ने हाथ पकड़ लिया। बोली—"आज नहीं...बस आज की आज नहीं—देखो कितना सुन्दर पक्षी है, कैसी मीठी बोली बोलता है।"

वे रतगल्ले का चहचहाना सुनते रहे। फिर आगे बढ़े तो मधु-मक्खियों की गुञ्जार सुनाई दी। देखा एक ऊंचे चीढ़ के वृक्ष पर अंगूरों की बेल लिपटी हुई थी। परन्तु सूखी थी, उस पर पत्ते न थे। यह बेल ऊपर चीढ़ के नुकीले झूमरों तक फैलती चली गई थी। यहां पर मधु-मक्खियों ने एक बहुत बड़ा छत्ता बना रखा था—अंगूर की बेल के ऊपर।

"हूँ", अज़ीज़ गुर्राया।

"क्या बात है?"

"यह देखो मधु-मक्खियां कितनी स्यानी होती हैं।"

"कैसे?"—नूरनशां ने पूछा।

"तुम्हें मालूम है इन मक्खियों ने चीढ़ के वृक्ष पर छत्ता क्यों नहीं बनाया, बेल पर क्यों बनाया है?"

"नहीं तो।"

"रीछ से बचने के लिये। रीछ चीढ़ के पेड़ पर चढ़ सकता है परन्तु वहां तक नहीं पहुँच सकता जहां बेल पर छत्ता है। रीछ का बोझ यह बेल नहीं सहार सकती। बल्कि वहां पर तो यह इतनी कोमल है कि केवल इस छत्ते का बोझ ही सहार सकती है।"

"तुम्हारा भी नहीं ?" नूरनशाँ ने पूछा।

अज़ीज़ उसकी ओर देख कर रुक गया, बोला, "शहद तो बहुत मीठा है परन्तु इन मक्खियों के डंक बड़े कड़वे होते हैं। मैं इस अंगूर की बेल पर भी चढ़ सकता हूँ परन्तु अभी मेरे पास कोई कम्बल नहीं है। कम्बल होता तो अभी तुम्हें छत्ते तक पहुँच कर दिखाता। कम्बल अपने चेहरे और सिर पर लपेट लेता और शहद का छत्ता तोड़ लेता। कल आऊँगा।" इतना कह कर अज़ीज़ इधर-उधर देखने लगा ताकि मार्ग याद रख सके। नूरनशाँ ने हँस कर कहा, "नहीं, मुझे ऐसा शहद नहीं चाहिये। मैं तो यूँ ही कह रही थी। अब शीघ्रता से घर चलो, भूख लग रही है।" अज़ीज़ ने कहा, "और मुझे तो और भी अधिक भूख इसलिये लग रही है कि आज तुम्हारे हाथ की पकी हुई रोटियाँ मिलेंगी।"

"उँह! इससे पहले कई बार हमारे घर में खा चुके हो।"

"परन्तु अपने घर में तो पहली बार है।"

जब अज़ीज़ और नूर अपने घर पहुँचे तो उन्हें द्वार खुला हुआ मिला। छत से धूआँ निकल रहा था। किसी ने आग लगाने का प्रयत्न किया था परन्तु सन्थे की झाड़ियाँ गीली थीं। इस कारण घर को ठीक प्रकार आग न लग सकी थी। हांडियाँ टूटी पड़ी थीं। अन्य बर्तन भी टूटे पड़े थे। नूरनशाँ के वस्त्र भी किसी ने फाड़ डाले थे। वे तार-तार हुए नीचे पड़े थे। दीवा धरती पर औंधा पड़ा था और तेल उसके चारों ओर फैल चुका था।

सहसा नूर की चीत्कार निकल पड़ी, "हाय, मेरी गुलदुम!"

गुलदुम को किसी ने नोच २ कर फेंक दिया था। एक पंख यहाँ पड़ा था, एक वहाँ, धड़ कहीं और सर कहीं, नन्हीं-सी जान का नन्हा-सा तो तन था।

नूरनशाँ ने रोते २ उसके पंख एकत्रित किये, उसका सिर, धड़।

फिर उसकी नन्हीं सी चोंच को अपने कपोलों से लगा कर सिसकियाँ लेने लगी।

अज़ीज़ ने अपने लुटे हुए घर पर दृष्टि डाली, नूरनशाँ के काँपते हुए हाथों में गुलदुम का शव देखा, फिर उसने धीरे से दीवार से लगी हुई राइफल को उठा लिया और घर से बाहर निकल गया। नूरनशाँ पूछती ही रह गई "तुम कहाँ जा रहे हो?" परन्तु अज़ीज़ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

यहुत समय तक चारों ओर सन्नाटा छाया रहा और इस पूर्ण निस्तब्धता में नूर को लगा जैसे उसके हृदय की धड़कन भी बन्द होती जा रही है।

फिर कहीं दूर एक गोली चली और नूरनशाँ का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। फिर एक गोली चली और नूरनशाँ का दिल और भी ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा और गुलदुम उसके हाथ से नीचे गिर पड़ी और उसने अपने दोनों हाथ अपनी छाती पर रख लिये।

फिर जैसे कई सौ वर्षों के लम्बे अर्से के बाद घर का द्वार खुला और बूढ़ा शिकारी अब्दुल्ला हौले-हौले पाँव रखता हुआ अन्दर आया और नूरनशाँ की ओर देखते हुए बोला, "तेरे लिये मेरे दोनों बेटे मारे गए।"

नूरनशाँ वहीं अपनी छाती पर हाथ रखे खड़ी रही।

अब्दुल्ला धीरे से धरती पर झुक गया और घुटने टेक कर दोनों हाथों से गुलदुम के टुकड़े चुन लिये और रुँधे हुए कण्ठ से बोला—"आओ इसे अभी दफ़न कर दें, क्योंकि फिर मुझे उनकी लाशें ढूंढने के लिये खड्ड में जाना है।"

वह गुलदुम को दोनों हाथों में उठाए हुए धीरे-धीरे द्वार से बाहर चला गया।

: १० :

भक्त राम

अभी-अभी मेरे बच्चे ने मेरे बायें हाथ की उँगलियों को अपने दांतों तले दबा कर इस ज़ोर से काटा कि मैं चिल्लाये बिना न रह सका और मैंने क्रोध में आकर उसे दो-तीन थप्पड़ भी जड़ दिये। बेचारा उसी समय से एक पिल्ले की तरह चिल्ला रहा है। ये बच्चे देखने में कितने नाज़ुक होते हैं परन्तु इन के नन्हे २ हाथों की पकड़ बड़ी मज़बूत होती है। इन के दांत यों दूध के दांत होते हैं परन्तु काटने में गिलहरियों को भी मात कर देते हैं। इस अबोध बालक की शरारत से सहसा मेरे दिल में बचपन की एक घटना जागृत हो उठी है। अब तक मैं उसे बहुत साधारण घटना समझता था और अपने ख़्याल में उसे बिल्कुल भूल चुका था परन्तु यह अचेतन मन भी क्या-क्या कलाबाज़ियां खाने लगता है। यों तो बात इतनी सी थी कि बचपन में मैंने अपने गांव के व्यक्ति भक्त राम के बायें हाथ का अंगूठा चबा डाला था और उसने मुझे थप्पड़ मारने की अपेक्षा सेब और अलूचे खिलाये थे और यों मैं इस घटना को भूल चुका था परन्तु ज़रा इस भानमती के पिटारे का अनोखापन देखिये। यह साधारण सी घटना सोई हुई नागन की तरह मस्तिष्क के पृष्ठ-पोषण में दबी हुई है और ज्यूंही मेरा बच्चा मेरी उंगलियों को दांतों तले दबाता है और मैं उसे पीटता हूँ यह पच्चीस-तीस वर्ष से सोई हुई नागन एकदम जाग उठती है और फन फैलाकर मेरे मस्तिष्क की चार-दीवारी में लहराने लगती है। अब कोई इसे किस तरह मार भगाये! अब तो उसे दूध पिलाना होगा। खैर, तो

वह घटना भी सुन लीजिये। जैसा कि मैं अभी कह चुका हूँ यह मेरे बालपन की घटना है। जब हम लोग रँगपुर के गांव में रहते थे। रंगपुर का गांव तहसील अजोड़ी का केन्द्र-स्थान है इसलिये अब यह एक छोटा-मोटा कस्बा बन चुका है परन्तु जिन दिनों हम वहाँ रहते थे रंगपुर की आबादी अधिक न थी। यही कोई ढाई-तीन सौ घर होंगे जिनमें अधिकतर घर ब्राह्मणों और क्षत्रियों के थे। दस-बारह घर जुलाहों और कुम्हारों के होंगे। पांच-छः बढ़ई, इतने ही चमार और धोबी और यही सारे गांव में ले-देकर आठ-दस घर मुसलमानों के। परन्तु उनकी हालत पतली थी इसलिए यहाँ उनका वर्णन करना व्यर्थ सा मालूम होता है।

गांव की बिरादरी के मुखिया लाला कांशी राम थे। यो तो ब्राह्मण समाज के सिद्धान्तों के अनुसार बिरादरी का मुखिया किसी ब्राह्मण ही को होना चाहिए था और फिर ब्राह्मणों की आबादी भी गांव में सब से अधिक थी। इस पर भी बिरादरी ने लाला कांशी राम को, जो जाति के क्षत्री थे, अपना मुखिया चुन रखा था। फिर वह सब से अधिक शिक्षित भी थे अर्थात् नये शहर तक पढ़े हुए थे और वह पत्र जिसे डाकिया भी न पढ़ पाता था वह अच्छी तरह पढ़ लेते थे। तमुसक हुंडी, नालिश, सम्मन, गवाही, निशान दही के अतिरिक्त नये शहर की बड़ी अदालत की हर कार्यवाई तक को वह अच्छी तरह जानते थे। इसलिये गांव का हर व्यक्ति अपनी हर मुसीबत में, चाहे वह स्वयं कांशी राम की ही पैदा की हुए क्यों न हो, लाला कांशी राम ही का सहारा ढूंढता था और लाला जी ने आज तक अपने किसी ऋणी की सहायता करने से इन्कार न किया था। इसी लिए वह गांव के मुखिया थे, गांव के स्वामी थे और रँगपुर से बाहर भी दूर-दूर तक लोग उनका यश गाते थे।

ऐसे सज्जन पुरुष का मंझला भाई लाला बांशीराम था जो अपने बड़े भाई के प्रत्येक अच्छे कार्य में उसका हाथ बटाता था परन्तु गांव

के लोग उसे उतना अच्छा न समझते थे क्योंकि उसने अपने ब्राह्मण धर्म को त्याग दिया था और गुरु नानक जी के चलाये हुए पंथ में शामिल हो गया था। उसने अपने घर में एक छोटा सा गुरुद्वारा भी बनवा रखा था और नये शहर से एक ज्ञानी ग्रन्थी को बुला कर उसे गांव में सिख मत के प्रचार के लिये नियुक्त कर दिया था ...लाला बांशीराम के सिक्ख बन जाने से गांव में झटके और हलाल का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था। मुसलमानों और सिक्खों के लिए तो यह एक धार्मिक प्रश्न था परन्तु भेड़-बकरियों और मुरगे-मुरगियों के लिए तो जीवन और मृत्यु का प्रश्न था। लेकिन मनुष्यों के नकारखाने में भला पशुओं की आवाज़ कौन सुनता है ?

लाला बांशीराम के छोटे भाई का नाम था भक्त राम। यह वही व्यक्ति था जिसका मैंने बचपन में अंगूठा चबा डाला था—किस तरह ? यह तो मैं बाद में बताऊंगा अभी तो उसका व्यक्तित्व देखिये...अर्थात् सख्त लफंगा, आवारा, बदमाश था यह व्यक्ति। नाम तो भक्त राम था परन्तु वास्तव में यह आदमी राम का नहीं, शैतान का भक्त था। रंगपुर के गांव में आवारगी, बदमाशी ही नहीं, ढिठाई और बेहयाई का नाम यदि जीवित था तो केवल भक्तराम की कृपा से। अन्यथा रंगपुर तो ऐसी सज्जन पुरुषों की बस्ती थी कि शायद देवताओं को भी वहां आते हुए भय आता होगा। सदाचार, पवित्रता और भक्ति का हल्का-हल्का प्रकाश मानो प्रत्येक प्राणी के चेहरे से छनता नज़र आता था। कभी कोई लड़ाई न होती थी। ऋण समय पर वसूल हो जाता था, नहीं तो जमीन कुर्क हो जाती थी और लाला कांशी राम फिर रुपया देकर अपने ऋणी को फिर काम पर लगा देते थे। मुसलमान बेचारे इतने कमज़ोर थे और संख्या में भी इतने थोड़े थे कि उनमें लड़ने का साहस न था। सब बैठे मसजिदों के मिनारों और उनके कंगूरों को चुपचाप ताका करते क्योंकि गाँव में उन्हें अजान तक देने की भी मनादी थी। कम्मियों और अछूतों का सारा धन्धा दोजन्मे

लोगों से सम्बन्धित था और वह चूं तक न कर सकते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें इस बात का ख्याल मात्र भी नहीं था कि जीवन इसके अतिरिक्त भी कुछ और हो सकता है। बस जो है वह ठीक है। यही मुसलमान समझते थे, यही ब्राह्मण, यही क्षत्रिय, यही चमार और सब मिलकर भक्तराम को गालियां देते थे क्योंकि उसकी कोई कल भी सीधी न थी।

भक्तराम लठ-गंवार था। बात करने में अक्खड़, देखने में अक्खड़, बुद्धिहीन, बड़े-बड़े हाथ-पांव, बड़े-बड़े दांत, बत्तीसी हर समय खुली हुई, ओठों से राल टपकती हुई, जब हँसता तो बत्तीसी के साथ मसूढ़ों की भी पूरी-पूरी नुमायश हो जाती। गांव में प्रत्येक व्यक्ति का सिर घुटा हुआ था और प्रत्येक हिन्दू के सिर पर चोटी थी परन्तु भक्तराम ने बलोचों की तरह लम्बे-लम्बे बाल बढ़ा लिए थे और चोटी गायब थी। बालों में जूओं की भरमार होती जिन्हें वह प्राय: घराट के बाहर बैठ कर चुना करता था। दिन में दो तीन बार सिर में सरसों का तेल रचाता, गले में फूलों का हार डालता और बीच में सीधी मांग निकाल कर और केश संवार कर वह संध्या समय गांव के चश्मों के चक्कर काटने शुरू कर देता। अपनी इन बुरी हरकतों से कई बार पिट चुका था परन्तु इसका उस पर कुछ भी असर न होता था। बड़ी मोटी खाल थी उसकी और फिर मेरा अनुमान है कि उसकी आत्मा की आवाज़ बिल्कुल ही मर चुकी थी। वह चिंगारी लुप्त हो चुकी थी जो पशु को मनुष्य बना देती है। भक्तराम शत-प्रतिशत पशु था और इसीलिए गांव वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय, धनवान और निर्धन, हिन्दू और मुसलमान, सुनार और चमार सब उस से घृणा करते थे।

परन्तु चूँकि लाला काशी राम का छोटा भाई था और गांव के सबसे बड़े घराने का एक व्यक्ति, इसलिये गाँव के लोग उसकी समस्त हरकतों को सहन करते चले आ रहे थे, पर जब हम रंगपुर में

आये उस समय भक्तराम के बड़े भाई ने परेशान हो कर उसे अपने घर से निकाल दिया था और तव्वी का एक घराट उसके सुपुर्द कर दिया था। भक्तराम वहीं काम करता था और रात को सोता भी वहीं था क्योंकि घराट दिन-रात चलता था। न जाने किस समय किसे आटा पिसाने की आवश्यकता आ पड़े और वह चादर या भेड़ की खाल में मक्की या गेहूँ के दाने डाले घराट पर चला आये और फिर उसके अलावा यह भी होता था कि दिन भर में जो अनाज आया था या जो अनाज अभी पिसने को पड़ा होता उसकी देख-रेख के लिये भी एक व्यक्ति का वहां होना ज़रूरी था। यह सोचकर लाला कांशी राम ने अपने छोटे भाई भक्तराम को अपने घराट का काम सौंप दिया था। लाला कांशी राम का घराट गांव में सब से बड़ा घराट था अर्थात् लगभग सारे गांव का अनाज वहीं पिसता था। एक और घराट भी था परन्तु वहां प्रायः मुसलमानों, अछूतों आदि का अनाज पिसता था या जब कभी बड़ा घराट चलते-चलते रुक जाता या जब पाटों के स्तर पर पथरीले दन-दाने बनाने के लिये उन्हें उल्टा दिया जाता तो कुछ दिनों के लिये दूसरे घराट वालों को अच्छी आय हो जाती थी। जिन दिनों बड़ा घराट चलता होता उन दिनों किसी मुसलमान या अछूत को यह साहस न हो सकता था। साहस तो क्या कभी उनके मस्तिष्क में यह विचार भी न आ सकता था कि उनका अनाज कभी बड़े घराट पर पिस सकता है। आरम्भ में जब भक्तराम ने काम संभाला तो उसने भी कुछ दिनों तक यही ढंग अपने यहाँ रखा परन्तु बाद में उसके स्वभाव के लाबालीपन ने बल्कि यों कहिये कि शैतानीपन ने ज़ोर मारा और उसने सोचा, चलो जी, क्या है इस में! जो भी आये आटा पिसवा कर ले जाये। इन पत्थर के दो पाटों में धरा ही क्या है और यह आख़िर अनाज ही तो है जिसे कुत्ता भी खाता है। इससे घराट की आय में बढ़ती ही होगी और दूसरे घराट का हाल जो पहले ही पतला है और भी पतला हो जायेगा और

सम्भव है बिल्कुल ही बन्द हो जाये। न जाने उसने क्या सोचा। जो हो, उसने कोई ऐसे ही बुरी बात सोची होगी जो उसने गांव के अछूतों, चमारों तक को घराट पर आटा पिसाने का निमंत्रण दे दिया। पहले तो लोगों ने बड़े ज़ोरदार शब्दों में इन्कार किया "भला कहीं ऐसा भी हो सकता है? क्या कहते हो लाला, हम प्रजा हैं, तुम राजा हो, यह तुम्हारा घराट है, हमारा घराट वह है, हम भला यहाँ आटा पिसाने क्यों आयेंगे। न बाबा, यह काम हमसे न होगा। और जो काम हमसे चाहो, ले लो लेकिन यह काम हमसे नहीं होने का।" परन्तु भक्तराम ने आख़िर अपनी चालाकियों से उन बेचारों को फुसला ही लिया और उन्हें इस बात पर राज़ी कर लिया कि वे अनाज उसी के घराट पर लाया करेंगे और वहीं से पिसवाया करेंगे।

भला बिरादरी में कहीं ऐसी बात भी छिपी रह सकती है? बिरादरी में शोर मच गया, काना-फूसी होने लगी। प्रतिदिन भक्तराम से झगड़ा होने लगा। तगड़ा आदमी था इसलिए गालियां सहन कर गया। हँस-हँस कर टालता रहा, फिर उसने क्रोध में आकर दो चार को पीट डाला। फिर एक दिन स्वयं पिटा। बात बढ़ते-बढ़ते कांशीराम के कानों तक पहुँची। उन्होंने भक्तराम को बुलाकर डाँटा। समझाया-बुझाया। ठंडे दिल से, नम्रता-पूर्वक पुचकार-पुचकार कर बातें कीं, ऊँच-नीच समझाई परन्तु जिसके दिल में कमीनापन हो वह भला धर्म-कर्म की बात क्या सुनेगा? भक्तराम ने इस कान से सुनी और उस कान से निकाल दी। पहले जब भक्तराम अपने घर पर रहता था, उसके लिए थोड़ी बहुत रोक-टोक भी थी। यह भय भी था कि बड़े भाई क्या कहेंगे, परन्तु अब तो वह दिन-रात घराट पर रहता था। अब उसे वहाँ रोकने वाला कौन था? अब वह खूब खुल कर खेला। उन्हीं दिनों वह भंग पीने लगा और एक मुसलमान फ़क़ीर के यहां आने जाने लगा जो उन दिनों अपनी पत्नी और एक नौजवान लड़की के साथ नदी के किनारे एक तकिए (मठ) में आकर ठहरा हुआ था। जूं जूं दिन

गुज़रते गये भक्तराम घराट के काम-काज से विमुख-सा रहने लगा और दिन का एक बड़ा भाग तकिये में चर्स और गांजा पीने में व्यतीत करने लगा। भाई ने बहुत समझाया। स्वयं गांव के सज्जन मुसलमानों ने उस पर घृणा-युक्त वाक्य कसे परन्तु वह तो किसी और ही नशे में चूर था। कुछ दिन और गुज़रे और फिर पता चला कि भक्तराम ने नये शहर जाकर उस मुसलमान फ़क़ीर की बेटी से निकाह (शादी) कर लिया है और इस्लाम क़बूल कर लिया है। सारे गांव में हल-चल मच गई, जब उन्होंने भक्तराम को काले फुन्दने वाली सुर्ख़ रंग की ऊँची टोपी पहने हुए देखा। फ़क़ीर तो खैर भय के मारे फिर कभी उस गांव में न घुसा, और यह उसने अच्छा ही किया; अन्यथा लाला कांशीराम और कांशीराम के साथी अवश्य उससे बदला लेने की कोशिश करते। परन्तु अपने भाई को अब क्या कह सकते थे जो अपनी पत्नी को लेकर फिर गांव में आ धमका था और घराट में— अपने भाई के घराट में—आकर बस गया था। दोनों पति-पत्नी यहीं रहते थे और भक्तराम अब बहुत प्रसन्न था और श्वेत लट्ठे की शलवार और काली चिकन की वास्कट, जिस पर कई सौ घुन्डीदार बटन लगे हुए थे, पहिनकर गांव में आज अभिमान-पूर्वक सर ऊँचा किए घूमता था और गांव की बहू-बेटियों पर बिना धार्मिक भेद-भाव के आवाज़ें कसता था। ऐसा दस-नम्बर का बदमाश था वह कि जब मेरी माँ मुझे गाली दिया करती तो मेरी तुलना भक्तराम से किया करती और मैं सदैव रो देता। भक्तराम से मुझे बड़ी चिढ़ थी। एक तो उसने हमारा धर्म छोड़ दिया था। भला ऐसे आदमी का क्या भरोसा और फिर भक्तराम की शैतानी देखो कि मुसलमान होते ही उसने गांव के मुसलमानों को उकसाना शुरू कर दिया कि वे मस्जिद के मुनारे पर चढ़ कर अज़ान दें। परन्तु वह तो भला हो मुसलमानों का जो किसी ने उसकी बात न मानी और डरते-डरते कहा कि गांव में आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ। इस पर वह बदमाश बहुत हँसा और उसने स्वयं वुज़ू करके

मस्जिद के मुनारे पर चढ़ कर अज़ान दे दी और उसकी गूंजती-गरजती आवाज़ गांव की चौहद्दी में, नदी के किनारे के नाशपातियों के झुण्ड में और दूर सनोबरों से ढकी हुई पहाड़ियों की छातियों में धमक पैदा करती हुई गूंज गई और गांव के प्रत्येक ब्राह्मण और क्षत्रिय का दिल एक अज्ञात भय से सिहर उठा। घोर कलियुग है.. घोर कलियुग अब कोई दिन में अवश्य निष्कलंक अवतार उत्पन्न होंगे.... हरे राम .... हे राम......और लाला काशीराम ने ब्राह्मणों से विचार-विनिमय करके एक बहुत बड़ा यज्ञ किया और प्रायश्चित किया और अपने छोटे भाई भक्तराम को बिरादरी से निकाल दिया और जायदाद से बेदखल कर दिया और पुराने घराट के पानी का बहाव मोड़ कर एक और अच्छा-सा घराट बनवा लिया। पुराना घराट जहां अब भक्तराम और उसकी पत्नी रहते थे, अब बड़ी जर्जर हालत में था। ग्राहक कम होते-होते बिल्कुल गायब हो गये।

मुसलमानों के जो कुछ घर शेष रह गये थे उन्होंने भी सहायता से हाथ खैंच लिया क्योंकि गांव के सामाजिक जीवन में भक्तराम ने यहां-वहां छिद्र डाल दिये थे और उसे कोई पसन्द नहीं करता था। उन्हीं दिनों भक्तराम की पत्नी के हां बच्चा होने वाला था। लोग कहते थे कि यह फकीरन ब्याह से पहले ही गर्भवती थी और वह फक़ीर भक्तराम को जुल देकर स्वयं सटक गया है। कोई कुछ कहता कोई कुछ; जितने मुँह उतनी बातें। हां, यह बात ज़रूर थी कि भक्तराम हर समय अपनी पत्नी की दिलजोई में लगा रहता था। वह उसके लिए हर प्रकार का परिश्रम करने को तैयार था। परन्तु गांव में अब उसे कोई काम देने को तैयार न था और ऐसे बदचलन के लिए भला उस सज्जन-पुरुषों के गांव में काम करने की क्या सबील हो सकती थी। मुझे यह रात नहीं भूलती जब भक्तराम की पत्नी के हां बच्चा होने वाला था। सुबह ही से उसने हमारे घर के चक्कर काटने शुरू कर दिये थे। मेरी मां की मिन्नतें की थीं और उसके पांव

पर सिर रख कर कहा था "तुम चलोगी मां तो मेरी बीवी बच जायेगी"। परन्तु मेरी मां ने, जो बड़े-बड़े क्षत्रिय घरानों और ब्राह्मणों के घर में दाई बनकर जाती थी, भक्तराम को टका-सा जवाब दे दिया था। आधी रात के समय भक्तराम ने चीख-चीख कर दुहाई दी परन्तु हम लोगों ने दरवाज़ा नहीं खोला और मस्त होकर सो रहे। दूसरे दिन पता चला कि भक्तराम की पत्नी की मृत्यु हो गई। बच्चा उत्पन्न न हो सका था। भक्तराम बहुत रोया, दहाड़ें मार-मार कर रोया। एक पशु के आँसू थे जो योंही अपने दुख पर टसुए बहा रहा हो।

कुछ दिनों में ही वह उस फ़क़ीरनी को भूल गया इसलिए अब उसने अपना मुसलमानी नाम भी छोड़ दिया। अब वह फिर अपने आपको खुदाबख्श की बजाय भक्तराम कहता था। और पहले की तरह गांव की गलियों में चक्कर लगाता था; परन्तु वाह रे हिन्दुओ, किसी ने उसे मुँह न लगाया, यहां तक कि उसके भाई भी उस से बात तक करने को तैयार न हुए और भक्तराम अपना-सा मुँह लेकर रह गया।

कुछ दिनों के बाद भक्तराम गांव छोड़ कर कहीं दूर चला गया। तीन चार मास के बाद जो लौटा तो उसके पास तीन दर्जन सांप थे और बहुत से छछूंदर, नेवले और ऐसे ही कई और जानवर और एक पिंजरे में एक सुन्दर मैना थी जो बहुत अच्छा गाती थी और मैं घंटों उस मैना के पिंजरे के निकट जाकर गाना सुना करता था और गांव के बहुत से लड़के मेरी तरह भक्तराम के पास आया करते थे और अब भक्तराम के पास बहुत सी जड़ी-बूटियां भी थीं जिनके सम्बन्ध में वह कहता था कि संसार के प्रत्येक रोग को यों चुटकियों में दूर कर सकती है। धीरे-धीरे लोग उस की ओर खिंचने लगे और उसे अच्छी खासी आय होने लगी। मेरी मां को, जो गांव की प्रसिद्ध दाई थी और स्त्रियों के प्रत्येक रोग का इलाज जानती थी, भक्तराम का यह स्वरूप एक आंख न भाया परन्तु वह कर ही क्या सकती थी? हां, जब कभी उन दोनों की मुठ-भेड़ हो जाती वह उसे खूब खरी २ सुनाती। भक्त राम

ये गालियां सुन कर हँस देता या अपना सिर खुजाने लगता और फिर एक ज़ोरदार कहकहा लगा कर चल देता। परले दर्जे का छटा हुआ बदमाश था वह.........

होते-होते यह हुआ कि भक्तराम की जड़ी-बूटियों की धाक सारे गांव में बैठ गई। फिर आस-पास के गांव के रोगी भी उसके पास आने लगे। अब उसने गांव के छोटे से बाज़ार में एक चमार की आधी दुकान किराये पर ले ली और वहाँ बैठ कर दवाइयाँ बेचने लगा। आधी दुकान में मौलू चमार जूतियाँ बनाता था। मौलू चमार और उसकी पत्नी और उसकी विधवा बहिन राम दई—बस ये तीनों प्राणी हर समय जूतियां सीते रहते थे। दूकान के दूसरे भाग में भक्तराम नये ग्राहकों को फांसता और सांपों का तमाशा दिखाता था और अपनी ज़बान को सांपों से डसवाता था और संखिया खा कर बताता था कि उस पर विष का कोई असर नहीं होता क्योंकि उसके पास ऐसी राम-बाण जड़ी-बूटियाँ हैं जो बड़े से बड़े विष की भी काट हैं। अर्थात् इसी तरह की गप्पें हांक कर और शेखियां बघार कर वह भोले-भाले लोगों से टके बटोरता था और मेरी माँ को उसकी बातें सुन-सुन कर बहुत क्रोध आता था। परन्तु हम लोग उसका कुछ बिगाड़ न सकते थे क्योंकि अब लोगों को उस पर विश्वास सा हो गया था और अब उस की जेब में रुपये भी थे और उसने गांव से बाहर नदी के उस पार मिट्टी का एक कच्चा सा घर भी बना लिया था जहां वह अवकाश के समय अपनी छोटी सी फुलवाड़ी बनाने में जुट जाता। मुझे भक्तराम से सख़्त घृणा थी और मैं कभी उसके घर न जाता था परन्तु अब वह उस सुन्दर मैना को, जो दुकान के बाहर लटके हुए पिंजरे में गाती रहती थी, अपने घर उठा ले गया था। इसलिये कभी-कभी मैं उस मैना को देखने चला ही जाता। अच्छा ही हुआ जो मुझे वह टोकता न था अन्यथा मेरा इरादा तो यह था कि यदि उसने कभी मुझे टोका तो गोफिये में ढेला रख कर उसका सिर फोड़ दूँगा।

भक्तराम का धन्धा अब उन्नति पर था परन्तु उन्हीं दिनों उसने एक ऐसी हरकत की कि गांव के लोग उससे फिर नाराज़ हो गये और उस घटना के बाद गांव में और आस-पास के गांवों में कभी उसकी साख न बंध सकी। बात असल में यह थी कि रामदई, जो कि मौलू चमार की विधवा बहन थी, लाला कांशीराम की दाश्ता थी और हर सम्भव सावधानी के बावजूद गर्भवती हो गई थी और लाला कांशीराम ने भीतर ही भीतर भक्तराम को कहला भेजा था कि वह कोई ऐसी औषधि दे जिस से रामदई का गर्भ गिर जाए परन्तु भक्तराम एक छटा हुआ बदमाश था। वह भला ऐसे अवसर पर किसी सज्जन की सहायता क्यों करता! उसने साफ़ इन्कार कर दिया बल्कि उसने यह बात ऐसी फैलाई कि लाला कांशीराम को कुछ महीनों के लिये गांव छोड़कर नये शहर जाना पड़ा और रामदई के लिये मुँह छिपाना कठिन हो गया। यह बात अब ऐसी फैल चुकी थी कि जब लाला बंशीराम के बड़े भाई कांशीराम ने मेरी मां को, जो उनकी खानदानी दाई थी, इस नाजुक मामले को अपने हाथ में लेने को कहा तो मेरी मां ने भी साफ़ इन्कार कर दिया। परिणाम यह हुआ कि बेचारी रामदई नौ मास तक उस हरामी बेटे को पेट में लिए-लिए फिरी और गांव भर में उसका तिरस्कार हुआ और हरामी बच्चा उसने अलग जना। इस पर उसकी बिरादरी ने उसे "जात बाहर" कर दिया और उसके भाई ने और उसकी भौजाई ने उसे घर से बाहर निकाल दिया। ऐसी अवस्था में जब कि उसका कोई सहायक न था और जब वह कई दिन से दर बदर ठोकरें खाती फिर रही थी और अपने बच्चे को दूध देने के लिये स्वयं उसके स्तनों में दूध न रहा था, वह भक्तराम के घर पहुँची। वह बदमाश तो जैसे उसकी प्रतीक्षा में ही था। उसने झट उसे अपने घर में डाल लिया और बिना शादी ब्याह किये वे लोग हँसी-खुशी एक साथ रहने लगे। गांव में इससे पहले कभी ऐसा न हुआ था—यह अंधेर—निर्लज्जता, सीना-ज़ोरी अपनी आंखों से तो देखी न जा सकती थी।

परिणाम यह हुआ कि भक्तराम की दुकान उठवा दी गई और उसे यह बात जता दी गई कि अब यदि वह गांव की ओर मुँह करेगा तो अपनी जान से हाथ धो बैठेगा।

भक्तराम अब अपने ही घर में रहता था और बगीचे और घर के आस-पास जो उसने थोड़ी सी ज़मीन मोल ले ली थी उस में खेती करके अपना, रामदई और उस हरामी बच्चे का पेट पालता था। कुछ लोगों का ख़्याल है कि वह बड़ा उदास जीवन व्यतीत करता होगा! यह ख़्याल बिल्कुल गलत है। जैसे पक्के घड़े पर पानी का कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार इन तमाम बातों ने भक्तराम पर कोई असर नहीं किया। उसके स्वभाव में कोई परिवर्तन न आया। उसे इस बात का ख़्याल ही नहीं था कि उसने अपने व्यवहार से अपने माँ-बाप, अपने खानदान, अपने गांव की इज़्ज़त को बट्टा लगाया है। वह उसी प्रकार प्रसन्न नज़र आता था जैसे कभी कुछ हुआ ही न था, जैसे वह अब भी गांव के अन्दर अपने भाई के सुन्दर घर में, जिसकी छत टीन की थी, रहता हो। मैंने एक दिन उसे उसके घर में दोपहर के समय देखा था, वह आंगन में एक चारपाई पर लेटा हुआ था और रामदई को चूम रहा था। मैंने इससे पूर्व किसी पुरुष और स्त्री को एक दूसरे को चूमते नहीं देखा था। यह देख कर मैं एकदम भौंचक्का रह गया और मेरे कानों में एकदम मेरी माँ के शब्द गूंज गये "कभी भूलकर भी भक्तराम के घर की ओर न जाना। वह बड़ा ही बदमाश है।" मेरी माँ ने सच कहा था। भला शरीफ लोग कहीं ऐसे होते हैं? घृणा और क्रोध के वशीभूत हो मेरी आँखों में आँसू भर आये। मैं वापिस जाने को ही था कि मैना ने मुझे देख लिया और चिल्लाने लगी "आओ आओ, नन्हे मुन्ने बालक, मिठाई दूँगी। आओ आओ नन्हे मुन्ने बालक मिठाई दूँगी।" मैना की आवाज़ सुनकर भक्तराम जल्दी से उठा और मेरी ओर बढ़ा। शायद वह मुझे पकड़ना चाहता था। बदमाश! मैं तेरे काबू में आसानी से नहीं आऊँगा। खूनी! डाकू! मैं

रोता हुआ आगे-आगे भाग रहा था और मेरे पीछे २ भक्तराम दौड़ता चला आ रहा था। "बात तो सुन बेटे!" परन्तु मैं ऐसा मूर्ख नहीं था कि रुक जाता। एकाएक उसने मुझे गरदन से पकड़ लिया और मैंने कटकटा कर उसके अंगूठे को अपने दांत तले दबा लिया और इस ज़ोर से काटा कि वह चीख पड़ा। परन्तु उसने मुझे थप्पड़ नहीं मारे, कुछ नहीं किया; हाँ, मुझे छोड़ा भी नहीं। वह मुझे अपने घर के भीतर आंगन में ले गया। मुझे अब भी गरदन से पकड़े हुये था कम्बख़्त! मैं अब भाग भी न सकता था। उसने रामदई की ओर संकेत करते हुए कहा "यह तुम्हारी मौसी है, इन्हें राम राम कहो!"

मैंने कहा "मौसी तुम्हारी होंगी। मैं इन्हें राम-राम नहीं कहूँगा।"

उसने हँस-हँस कर कहा "देखो यह तुम्हारा छोटा भाई है मन्नो। इसके साथ खेलो।"

मैंने कहा "मैं इसके साथ नहीं खेलूंगा। मेरी माँ कहती है रामदई का बच्चा हरामी है! हरामी यह बच्चा ·····।"

एकाएक रामदई ने बच्चे को अपनी छाती से चिपटा लिया। भक्तराम खिलखिला कर हँस पड़ा। उसके मैले-मैले दांत और मसूढ़े ओठों के बाहर निकल आये। कहने लगा "सेब खाओगे? सेब खाओगे? आलूचे? आलूचे··हाँ हाँ" मैंने सिर हिला कर इन्कार कर दिया।

उसने ज़बरदस्ती बहुत से सेब और आलूचे मेरी जेब में ठूस दिये; फिर मुस्करा कर बोला "यह मैना तुम्हें अच्छी लगती है न। ले जाओ इसे।"

वह पिंजरा उतार कर मुझे देने लगा।

मैंने कहा "कोई थूकता भी है तुम्हारी इस मैना पर? मेरी माँ कहती है कि भक्तराम आदमी नहीं जानवर है। वह तो चमारों से भी बुरा है। छोड़ो मुझे, मुझे नहीं चाहिये तुम्हारी मैना वैना.........।"

उसने हँस कर मुझे छोड़ दिया, कहने लगा "तो अब भाग जाओ।"

उस बदमाश के पंजे से निकल कर जो मैं भागा तो सीधा घर आकर ही साँस लिया। मैंने माँ को सारी बात बताई तो पहले तो वह मुझ पर बहुत बिगड़ी फिर भक्तराम को खूब कोसा और सारे सेब और आलूचे उठा कर गली में फैंक दिये।

उसके बाद मैं कभी भक्तराम के घर पर नहीं गया।

कुछ मास पश्चात् जब लाला काँशी राम नये शहर से लौटा तो उसने मौलू चमार से कह-सुनकर भक्तराम पर बदचलनी और अग़वा का मुकदमा कर दिया। छः सात महीने भक्तराम जेल में रहा आख़िर रिहा हो गया। परन्तु जेल में रह कर उसका स्वास्थ्य काफ़ी गिर गया था और अब जब वह जेल से छूट कर आया तो लोग कहते थे कि उसके चेहरे पर वह पहली सी प्रफुल्लता नहीं थी। न अब वह पहले की तरह छाती तान कर ही चलता था। कुछ झुका-झुका सा था, कुछ उदास उदास! परन्तु यह स्थिति भी कुछ दिनों तक ही रही। फिर वह उसी प्रकार ढीठ, निर्लज्ज बन कर इधर-उधर घूमने लगा और गाँव गाँव जा कर अपनी जड़ी-बूटियों का कारोबार करने लगा। परन्तु शरीफ़ लोग उसे मुंह न लगाते थे और उस की परछांई से भी कतराते थे। हिन्दु, मुसलमान, चमार, हर धर्म और हर जाति के लोग उसे आवारा और शोहदा समझते थे और हमारे गांव में तो उसकी बुराइयाँ उदाहरणतः प्रयोग में आती और मातायें अपने बच्चों को सदाचारी बनने को कहते समय कहा करती थीं "देखो अगर कोई बुरा काम करेगा तो तुम्हारी भी वही दशा होगी जो भक्त राम की हुई है।"

जैसा व्यर्थ सा उसका जीवन था वैसी ही व्यर्थ उसकी मृत्यु हुई.........

मैंने उसे मरते समय नहीं देखा परन्तु जिन लोगों ने उसे मरते समय देखा वह भी उसके पागलपन पर आज तक हँसते हैं। कहते हैं मरने से पूर्व वह बहुत खुश था। नदी के किनारे रामदई के साथ खड़ा था और उन तूफानी लहरों की ओर देख रहा था जो अधिक वर्षा के कारण नदी में बड़े वड़े भँवर बना रही थीं। एकाएक उसने अपने किनारे के निकट भेड़ के तीन-चार बच्चों को देखा जो वाआ वाआ करते करते चले जा रहे थे। क्षण भर के लिये भक्तराम ने उनकी ओर देखा और दूसरे ही क्षण वह नदी की तूफानी लहरों की गोद में था और भेड़ के बच्चों को बचाने का निष्फल प्रयत्न कर रहा था। इसी प्रयत्न में उसने अपनी जान भी दे दी। दूसरे दिन जब तूफान थम गया तो उसकी लाश नदी के पश्चिमी मोड़ पर तुंग के एक तने से लिपटी हुई पाई गई, जिसका आधा भाग पानी में डूबा हुआ था। कैसी मूर्खों, पागलों की सी मृत्यु थी वह! पशु-जीवन की पशु-मृत्यु! भला ऐसी मृत्यु में भी कोई तुक है ... परन्तु उसके अच्छे भाइयों ने अच्छा ही किया। उसे क्षमा कर दिया और यद्यपि वह बिरादरी से निकाला जा चुका था और अब हिन्दु रहा था न मुसलमान, न अछूत, फिर भी उन्होंने अपने धर्म के अनुसार उससे अच्छा व्यवहार किया। वह उसकी लाश को घर ले गये, उसे नहलाया-धुलाया और रीति के अनुसार उसे श्मशान घाट जाकर जला दिया। उस समय मैं वहीं था ... ...

परन्तु यह १६२० की बात है। आज १६४४ है और मेरे नन्हे बेटे ने मेरी उंगलियों को ज़ोर से काट खाया है और मैंने क्रोध में आकर उसे दो थप्पड़ जड़ दिये हैं और मासूम बालक सोफे में मुंह छिपाये रो रहा है और मैं सोचता हूँ— आज मैं यह सोचता हूँ भक्त राम! कि तुम जो दस-नम्बर के बदमाश थे और तुम्हारा कोई धर्म न था, तुम जो एक गँवार उजड्ड झूठे पनसारी थे और जड़ी-बूटियां बेचते थे और लोगों को ठगते थे और उनसे रुपया बटोरते थे और एक मुसलमान फ़क़ीरनी

से निकाह किये हुये थे और एक विधवा अछूत से झूठ मूठ का विवाह रचाये हुए थे; भक्त राम ! तुम जो जेल की हवा खा चुके थे और गांव भर के माने हुए लफंगे और गुण्डे थे···तुम ! जिससे लोग घृणा करते थे और शायद आज भी करते हैं, एक मेरे गांव में ही नहीं, हर गांव में, हर शहर में, हर जगह में······आज मैं यह सोचता हूँ भक्तराम ! शायद मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। शायद मैंने तुम्हें पहचानने में ग़लती की। शायद तुम उन बड़े आदमियों से भी बड़े और महान् थे जो रेलें बनाते हैं और लोगों को भूखों मर जाने देते हैं; जो ऊंचे-ऊंचे भवन बनाते हैं और ईश्वर की सन्तान को गलियों में नंगा फिरने पर विवश कर देते हैं। जो बेबस स्त्रियों से उनका सतीत्व छीन लेते हैं, जो अपनी सामयिक प्रेमिकाओं के लिए महल और अपनी सन्तान के लिये अनाथालय बनवाते हैं और समाज के मन्दिर में बैठ कर उन पर लानत भेजते हैं। हां, तुम उन सब आदमियों से महान् हो जो ट्रैक्टर, हवाई जहाज़, स्कूल, मशीनगन, थियेटर, सिनेमा, ऐम्पायर बिलडिंग, नाचघर, बैंक, राज्य, तख्ते ताऊस, उपनिषद्, दर्शन-शास्त्र, भाषा और साहित्य का निर्माण करते हैं और मानव-जाति को विश्व के अन्धकार में सदैव के लिये हैरान और परेशान छोड़ देते हैं। तुम उन समस्त व्यक्तियों से महान् हो भक्तराम ! क्यों कि तुम पनसारी हो, जड़ी-बूटी बेचते हो, आवारा हो, नहीं नहीं, तुम सच-मुच के कवि हो। तुम वह कवि हो जो हर शताब्दी में, हर वर्ष, हर जगह, हर गांव में उत्पन्न होता है परन्तु लोग, अच्छे लोग, नेक लोग, बड़े लोग उसे समझने से इन्कार कर देते हैं। तुम वह कवि हो मित्र ! आओ हाथ मिलाओ !

परन्तु भक्तराम अब मुझ से हाथ नहीं मिला सकता क्योंकि वह मर चुका है। १९२० की बाढ़ में भेड़ के बच्चों को बचाते समय मर गया था और वहीं नदी के किनारे उसकी चिता जलाई गई थी और कोई उसकी मृत्यु पर रोया न था। शोले उसकी चिता से उठकर आकाश की

ओर बढ़ रहे थे। लाल २ शोले, शोलों के पत्ते, शोलों की कलियां, शोलों के फूल उसकी चिता से खिल रहे थे और चिता जल रही थी और किसी की आंख में आँसू न थे और वातावरण भी उदास न था। आकाश निर्मल था, नीला गहरा, सुन्दर। धूप भी स्वच्छ थी, खिली हुई, चमकदार, नरम और गरम, और कहीं-कहीं बादलों के श्वेत-श्वेत राजहंस तैर रहे थे और नदी का पानी गीत गाता हुआ, भँवर बनाता हुआ, लहरों के जाल तनता हुआ उसकी चिता के निकट से गुज़र रहा था और चिता के पास ही खट्टे अनारों के झुण्ड में शोलों ऐसे सुर्ख़ फूल दहक रहे थे। विश्व प्रसन्न था, भगवान प्रसन्न था, स्वयं कवि प्रसन्न था क्योंकि आज उसका दिल शोला बन गया था और उस की आत्मा फूल! ये शोले जो तुम्हारे दिल में हैं, ये फूल जो हर जगह हैं, जो तुम्हारे अन्दर हैं और मेरे अन्दर हैं, और फिर अन्दर और बाहर हर जगह हैं। विश्व और कवि और मनुष्य एक हो गये थे। भला ऐसी मृत्यु किसे प्राप्त होती है भक्तराम!

: ११ :

दद्दूर किस्सेता

शमा के सामने

मेरा गांव अभी दस कोस दूर था। तीसरे पहर के परछांये लम्बे हो गये थे, खच्चर के क़दम धीमे पड़ गये थे और ढलवान पगडंडी के दोनों ओर की सुम्बलू, नबाथ और भीकड़ की झाड़ियों में बटेरों, बनसियों और रतचिड़ियों ने सरकना, फुदकना और शोर मचाना आरम्भ कर दिया था। कहीं-कहीं कोई झींगर टर्रा उठता और फिर एकदम चुप हो जाता। शायद उसने भी सह-पहर की घटती हुई धूप और मिटती हुई गरमी में संध्या के सुहावने, शीतल, सुगन्धित श्वास का स्पर्श पा लिया था और इसीलिए अधीर हो कर चिल्ला रहा था। फिर एकाएक चुप हो जाता जैसे उसे अभी संध्या के आगमन का विश्वास न हो। अभी नहीं, अभी नहीं, शायद संध्या अभी नहीं आएगी। फिर कहीं से हवा का कोई शीतल झोंका उसके समीप से गुज़र जाता और उसे अपने प्रेमी के आगमन का विश्वास हो जाता और वह झाड़ी की टहनी से लगा हुआ वहीं प्रसन्नता से चिल्ला उठता—आएगी, आएगी, संध्या अवश्य आएगी। इसी आशा और निराशा के मध्य में कहीं प्रसन्नता की मंज़िल है .... परन्तु मेरा गांव तो अभी दस कोस दूर था और मेरा खच्चर थक चुका था और भूख से परेशान हो कर बार-बार कान हिलाकर रुक जाता, नथने फड़फड़ा कर इधर-उधर देखने लगता था—शायद कहीं मंज़िल का पता मिले—अन्त में हम उस स्थान पर जा पहुँचे जहां वह ढलवान पगडंडी समाप्त होती थी और नीचे पहाड़ी कस्सी पर चीड़ के कुन्दों का बना हुआ

पुल था। नये-नये कुन्दों से जेगन की महक आ रही थी। यहाँ पहुँच कर मेरा खच्चर रुक गया और बड़े प्रयत्न के बावजूद अपनी जगह से न हिला। विवश हो मैं उतर पड़ा और लगाम हाथ में लेकर उसे पत्थर की बावली की ओर खेंच ले गया जो पहाड़ी कस्सी के बिल्कुल किनारे पर बनी हुई थी और जिसके सम्बन्ध में कहा जाता था कि आज से हज़ारों वर्ष पूर्व उसे पांडवों ने बनवाया था। यहाँ पर खूबानी के पेड़ थे और एक छोटी-सी फुलवाड़ी। मैंने फुलवाड़ी से खच्चर को बांध दिया और दाना निकाल कर उसके सामने रखा। फिर झोले में से अपने लिये मक्की की रोटी और गनियार का साग निकाला – काश! इस समय कहीं से एक हरी मिरच मिल जाती और थोड़ी-सी चटनी.........

एक-दो बार पहले भी मैं अपने काम-काज के सम्बन्ध में इस रास्ते से गुज़र चुका था। बावली से कुछ क़दम की दूरी पर दूर तक धान के खेत फैले हुये थे और जहां यह खेत समाप्त होते थे वहां से चमन कोट की बस्ती आरम्भ होती थी। चमन कोट के गांव में मेरा मामू अल्लादाद खां रहता था और सारे इलाके में अपनी डकैती के लिए प्रसिद्ध था। इसके विपरीत मेरा बाप सरकारी नौकर था; और यों भी हमारे रंगपुर के निवासी बहुत ही शान्ति-प्रिय हैं। इसलिये इस सम्बन्ध के होते हुए भी मैंने कभी चमन कोट अपने मामू के यहां ठहरना उचित नहीं समझा। उस समय भी जब कि दिन तेज़ी से ढल रहा था मैंने यही उचित समझा कि जिस तरह हो अपना सफ़र ते करके रंगपुर पहुँच जाऊँ। मेरे पास अपने भारी भरकम बटुए में सरकारी लगान की अच्छी खासी रक़म थी और यद्यपि अल्लादाद मेरा मामू था और मेरे पास दोनाली बन्दूक थी और पेटी में कारतूस भरे हुए थे और मेरा निशाना कभी न चूकता था, फिर भी रात वहां बिताने के लिए मेरा हृदय न मानता था। ज़रा यह खच्चर सुस्ता ले तो जैसे भी होगा इसे घसीट ले चलूंगा। खाना खाकर मैंने खच्चर की ओर देखा। उसने भी

अपना दाना समाप्त कर लिया था। मैंने उसे फुलवाड़ी से खोलकर रास उसकी अयाल पर रख दी और उसे बावली की ओर बढ़ने का संकेत किया। फिर मैं घुटने टेक कर बावली पर झुक गया और मेरे ओंठ पानी के स्तर से जा मिले। मुझे इस प्रकार पानी पीने में बहुत आनन्द आता है। यह आनन्द ओक से पीने में कहां। खच्चर भी मेरे निकट ही खड़ा पानी पी रहा था। एकाएक वह अपनी थूथनी बढ़ा कर मेरे बिल्कुल निकट ले आया। यहां तक कि मैं उसका गरम-गरम श्वास जिसमें घास और चनों की मिली-जुली सुगन्ध बसी हुई थी, अपने गालों पर महसूस करने लगा। मैंने धीरे से उसकी थूथनी को परे कर दिया। आख़िर प्रेम का यह कौन-सा ढंग है ?

"यह बावड़ी पशुओं के लिये नहीं है।" पीछे से किसी ने कहा। मैंने घूम कर देखा, दो औरतें हाथों में घड़े लिए खड़ी थीं—दोनों में से किसी एक ने कहा होगा। दोनों जवान थीं, दोनों सुन्दर, आंखें काली और बड़ी-बड़ी, हां एक की ठोढ़ी लम्बोतरी थी और दूसरी की गोल और मुलायम नाशपाती की तरह। दोनों पांव से नंगी थीं। उन्होंने काली घगरियां पहन रखी थीं और घगरियों के ऊपर काले रंग की कमीज़ें थीं। हाथ-पांव परिश्रम के अभ्यस्त मालूम होते थे। कलाई से लेकर उंगली की अन्तिम पोर तक और टखनों से लेकर पांव के नाखून तक जिल्द का रंग जैतूनी न था, भूरा था। कभी जैतूनी होगा, कभी भूरा भी न रहेगा। जब जवानी गुज़र जाएगी तो हाथ-पांव कालिमामय हो जायेंगे और पकी हुई नाशपाती की सी जैतूनी जिल्द में समय अपने तेज़ चाकू से गढ़े डाल देगा और झुर्रियां बुनता चला जाएगा और फिर गालों का सोना उड़ जाएगा और ... ...मगर ऐ अन्धे दार्शनिक ! इस समय तो देख ! आंखों में जवानी नाच रही है, ओठ कांप-कांप जाते हैं, गालों के सेब चमक रहे हैं जैसे सूर्यास्त की डालियां झुक गई हैं और पश्चिमी आकाश के बाग की बसंत इन दो मूर्तियों में उतर आई है। मैं आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगा। उनमें से एक—वह

जिसकी ठोड़ी लम्बोतरी थी, बोली—"यह बावड़ी जानवरों के लिए नहीं है।"

मैंने कहा "हर इन्सान जानवर होता है—जो पानी पीता है वह जानवर है, क्या आदमी क्या खच्चर। पियो बेटा!" यह कह कर मैं अपने खच्चर को, जो मेरी तरह आश्चर्य से उन औरतों की ओर देख रहा था (आह! इस देश में बेचारा खच्चर भी वासना-भूख से मुक्त नहीं) थूथनी से पकड़ कर फिर ज़बरदस्ती पानी पिलाने लगा।

लम्बोतरी ठोड़ी वाली के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह जल्दी से आगे बढ़ी और उसने रास पकड़ कर खच्चर को अपनी ओर खींचा। खच्चर उछल कर फुलवाड़ी के पास जा रहा। इसी उछल-कूद में उसने जो दोलत्ती झाड़ी तो क्रोध से लाल हो रही सुन्दरी का घड़ा चूर-चूर हो गया।

मैं हँसने लगा, दूसरी औरत जिसे उसकी ठोड़ी के आधार पर नाशपाती कहना चाहिए, खिलखिला कर हँस पड़ी।

"इसमें हँसने की क्या बात है मरजाना?" पहली औरत ने क्रोध से कहा और झट मरजाना के हाथ से घड़ा छीन कर नदी में लुढ़का दिया। और लहरों पर फुदकता-कूदता घड़ा बहुत दूर तक बिना टूटे बहता चला गया। हम आश्चर्य-चकित-से उसका सफ़र देख रहे थे, फिर एक बड़ी लहर ने उसे एक ऊँची चट्टान के किनारे से टकरा दिया और एक धक्के के साथ वह बेचारा भी ..।

"हाय हाय..." मैंने हाथ मसलते हुए कहा।

"क्यों हँसते हो" पहली औरत दांत पीस कर बोली।

मैंने कहा "जब दो जानवर लड़ते हैं तो घड़े टूट जाते हैं।"

वह बोली "जानवर तुम हो, सुअर... एक तो बावली खराब कर दी खच्चर को पानी पिला कर, फिर हमारे घड़े...और अब बातें बनाते हो, पैसे निकालो नहीं तो ...।"

"नहीं तो क्या होगा?" मैंने पूछा।

"मैं तुम्हारा खच्चर ले जाऊँगी" यह कह कर वह खच्चर की ओर लपकी और इससे पहिले कि मैं उसे रोकूं वह उसकी पीठ पर चढ़ कर भाग निकली। मरजाना भी खच्चर के साथ-साथ दौड़ने लगी और मैं भी दोनों के पीछे पीछे बन्दूक उठाये दौड़ने लगा। जी में आया कि फ़ायर कर दूं। परन्तु क्या करता, औरत ज़ात पर हाथ कैसे उठाता ?

"ऐ . सुनो तो खुदा की क़सम...यह लो पैसे, ठहर तो जाओ, खुदा की क़सम, मुझे आज रंगपुर जाना है।"

परन्तु उन कम्बख्तों ने एक न सुनी। खच्चर भी जो पहले एक क़दम न उठाता था अब घाटी पर लुढ़कते हुए पत्थर की तरह तेज़ी से चला जा रहा था। मरजाना हिरनी की तरह चौकड़ियां भर रही थी। दूसरी औरत मुड़-मुड़ कर मेरी ओर देखती और हँसती जाती थी। "ठहर तो सही, सूअर की बच्ची, आज ही रात तुझ से ब्याह न किया तो शाहज़मां नाम नहीं।" मैं झाड़ियों पर से कूदता, फलांगता, नदी के किनारे-किनारे भागा चला जा रहा था। अगर दोनाली और कारतूसों का बोझ न होता तो कब का उन्हें जा लेता। आख़िर दौड़ते-दौड़ते मेरा दम फूल गया। मैं रुक गया और चिल्ला कर बोला.... "ठहर जा . . ऐ डाकू की बेटी .....नहीं तो अभी फ़ायर करता हूँ। मगर कम्बख़्त ने यह धमकी सुन कर भी मुड़ कर न देखा। वह उसी प्रकार खच्चर को सरपट भगाये लिये जा रही थी और मैं वहीं एक टीले पर खड़ा होकर उसे देखता रहा। अब वह घाटी के नीचे जा रही थी जहाँ नदी एक छोटी-सी वादी में बहती थी, जहाँ एक छोटा सा वन था और हरे तल्ले पर तीन-चार खैमे खड़े थे। खैमे ? ये खैमे तो खानाबदोशों के सिवाय और किसी के नहीं हो सकते। इनमें आग जल रही थी और हल्का-हल्का धुआँ उटता हुआ आकाश की ओर जा रहा था जहाँ बादलों का रंग गुलाबी से लाल और लाल से गहरा सुर्ख़ होता जा रहा था और सितारों के कमल खिलते जा रहे थे.....मरजाना और

खच्चर पर बैठी हुई इस औरत को मैंने उन खेमों के पास उतरते देखा और फिर वे दोनों एक खैमे में घुस गईं। खच्चर बाहर चरने लगा। थोड़े समय के बाद एक आदमी खैमे से बाहर निकला। उसने अपने हाथ अपनी कनपटियों के पास ले जा कर वहीं दूर से मेरी ओर देखा और फ़िर खच्चर को एक खैमे से बांधकर भीतर चला गया। मैंने सोचा, लो, अब इन खानाबदोशों से उलझना पड़ेगा। फिर ख़्याल आया, क्यों न अपने मामू अल्लादाद खां से सहायता लूं। फिर सोचा मेरे बटुए में सरकारी लगान के पैसे हैं, कहीं उसे पता चल गया तो वह डाकू तो है ही कहीं हाथ न साफ़ कर दे। अब तो अकेले ही इन से निपटना होगा। खैर, यह 'ट्वेल्व-बोर' इन्हें डराने के लिये काफ़ी होगी। यह सोच मैं नीचे उतरने लगा, जल्दी जल्दी, क्योंकि अंधेरा बढ़ रहा था, सूर्यास्त के तुरन्त ही बाद अंधकार जैसे पहाड़ों की चोटियों से उभर पड़ा और सारी आबादी पर फैलने लगा। हां, खैमों में आग जल रही थी और परे एक वृक्ष से बंधा हुआ मेरा खच्चर खड़ा था। घबराओ नहीं मेरे प्यारे! मैं तुम्हें इन ज़ालिमों के चंगुल से अभी आज़ाद कराता हूँ।

मैं आगे बढ़ा। किसी ने पुकारा "कौन है?"

"मैं हूँ एक आदमी।"

"आदमी या जानवर" वह कम्बख़्त फिर बोल उठी। अब वह दोनों हाथ अपने कूल्हों पर रखे बड़े गुस्से से खड़ी थी और खैमे का पर्दा हवा में हिल रहा था और शोलों की लपक उसके गालों पर नाच रही थी।

"शमा! तुम अन्दर चलो" उस आदमी ने कहा "मैं इस से खुद निपट लूंगा।"

मैंने कहा "मैं लड़ाई-झगड़ा करने नहीं आया, तुम्हारी बीवी मेरा खच्चर चुरा लाई है, वह मुझे दे दो।"

वह बोला "मेरी बहन को मेरी बीवी न कहो राही।" मैंने कहा

"वह जो कोई भी है, तुम्हारी बहन, बीबी या मां, मुझे इस से कोई सरोकार नहीं, मुझे अपना खच्चर चाहिये।"

"मैं तुम्हारी मां हूँ सूअरनी के जने।" वह फिर चिल्लाई और खेमे से बाहर निकल आई।

"तुम चुप रहो शमा, मुझे इस से बात करने दो।"

वह भीतर चली गई। आदमी बोला "तुम कहां के रहने वाले हो?"

"रंगपुर।"

"तुम्हारा नाम?"

"शाहज़मां!"

"क्या करते हो?"

"मैं—मैं नम्बरदार का बेटा हूँ।"

"मैं पूछता हूँ तुम क्या करते हो? तुम कहते हो, मैं नम्बरदार का बेटा हूँ।"

मैंने कहा "मैं शिकार खेलता हूँ, प्रेम करता हूँ, कभी-कभी अपने बाप के लिए गांव से लगान वसूल करता हूँ—अच्छा अब लाओ मेरा खच्चर।" यह कह कर मैं खच्चर की ओर बढ़ा।

वह बोला "हम दो-तीन दिन तक रंगपुर आने वाले हैं, क्या वहाँ खेतों में काम मिलेगा?"

मैंने कहा "तुम खानाबदोश बड़े कामचोर होते हो, काम से जी चुराते हो, दिन भर आवारा-गर्दी करते रहते हो या किसानों की भेड़-बकरियाँ चुराते रहते हो और जब गांव से चले जाते हो तो मालूम होता है कि फलां किसान के हाँ से हल चोरी हो गया, फ़लां के घर से मुर्गियाँ चोरी हो गईं। उसकी बकरी नहीं मिलती तो उसका गधा।"

वह बोला "यह तो मामूली सी बात है। तुम लोग ज़मीन के बादशाह हो, इन छोटी-छोटी बातों पर तुम्हारा ध्यान न जाये तो अच्छा है।"

उसके स्वर में बड़ी विनय थी "हमें काम की बड़ी ज़रूरत है।"

"चमन कोट तुम्हें पसंद नहीं ?"

"जगह अच्छी है मगर डाकुओं की बस्ती है और अल्ला दाद हमें बहुत डराता-धमकाता है। अगर यहाँ रहे तो किसी दिन खून खराब हो जायेगा" एकाएक उसने अपना हाथ बढ़ाया। मैंने देखा उसके हाथ में भी बन्दूक थी।

वह बोला "तुम अपना खच्चर ले जाओ, मेरी बहन तो बेवकूफ़ है। भला राहियों से कौन उलझता है। वे भी तो एक तरह से हमारे ही ऐसे खानाबदोश होते हैं—" वह हँसा। उसकी हँसी में बड़ा आकर्षण था।

मैं निकट के एक ख़ैमे के भीतर एक बुढ़िया, एक जवान औरत, दो बालक और एक अधेड़ आयु के खाना-बदोश को देख सकता था। सब लोग खाना खा रहे थे। बुढ़िया बार बार हांडी में लकड़ी का चमचा डाल कर शोरबा निकालती थी और सब को बाँटती जाती थी—महक उड़ उड़ कर मेरे नथनों में आ रही थी।

उसकी नज़रों ने मेरी नज़रों का पीछा किया। फिर मेरे स्वभाव का अनुमान करके बोला "तो आओ आज की रात यहीं रह जाओ। आगे भयानक जंगल है, अकेले कैसे जाओगे ?"

"अकेला तो नहीं हूँ, यह दोनाली मेरे साथ है।" मैंने कहा।

"इस दोनाली पर तुम्हें बड़ा अभिमान है, इसे चला भी लेते हो ?" वह फिर हँसा। उसके व्यंग को मैंने क्षमा कर दिया और चुपचाप उठ कर ख़ैमे में चला गया।

चूल्हा ज़मीन खोद कर बनाया गया था और उस पर हांडी चढ़ी हुई थी। मरजाना पास बैठी चमचे फेर रही थी और आंच मद्धम करती जाती थी। शमा सिर झुकाये मक्की का आटा मल रही थी। दीपक का प्रकाश उसके गालों पर, उसके बालों पर पड़ रहा था। मरजाना की आंखों में आश्चर्य था तो शमा की आंखों में कोई अपरिचित

सा भाव। नज़रें फर्श पर बिछी हुई थीं। यह खैमा जो गंदे चीथड़ों, रंगा-रंग कपड़ों के टुकड़ों और गन्दम के खोशों से बना हुआ था देखने में योंही सा था परन्तु था बड़ा मज़बूत। तांत की सिलाई थी। एक कोने में दो गठड़ियाँ रखी थीं, एक ओर बकरी बंधी थी जिसके थनों पर एक मैला सा कपड़ा लिपटा हुआ था। एक बड़े-बड़े बालों वाला कुत्ता मुझे भीतर आता देख कर गुर्राने लगा "चुप बे ज़ालिम" आदमी की आवाज़ ने उसे खामोश कर दिया। उस कुत्ते के बालों का रंग फौलादी था और आंखें लाल। अच्छा नाम पाया था उसने "ज़ालिम।"

मैंने उस आदमी से कहा "और तुम्हारा नाम क्या है?"

"मुझे खुदादाद कहते हैं।"

मैंने कहा "तुम अपनी बहन की शादी क्यों नहीं करते? जब तक यह अपने घर वाले से पिटेगी नहीं, ठीक नहीं होगी।"

वह हँसने लगा "कोई ऐसा घर वाला भी तो मिले जो इसे ठीक कर सकता हो।"

मैंने कहा "मुझे ब्याह दो। इस सूअरनी की मार-मार कर चमड़ी न उधेड़ दूँ तो शाह ज़मां ..."

शमा बिजली की तरह लपक कर उठी और अपने भाई से बन्दूक छीन कर बोली "हाथ लगा कर तो देखो। राही हो इसलिए छोड़े देती हूँ, कोई और होता तो गोली छाती से पार होती।"

खुदादाद मुस्कुरा कर कहने लगा "शमा सच कहती है, इसका निशाना कभी नहीं चूकता।"

"यह तो हम भी मानते हैं" मैंने आह भर कर कहा और वह तेज़ी से मुड़ गई और मरजाना के पास जा कर बैठ गई। मरजाना की बड़ी-बड़ी हैरान आंखें मेरे चेहरे पर जमी हुई थीं। शमा अपने ओठ चबा रही थी। वह फिर लकड़ी के परात के पास जा बैठी और मक्की का आटा गूँध कर टोडे (रोटी) पकाने लगी। नरम-नरम टोडे चूल्हे में

सेंके जा रहे थे और उनमें से मक्की के ताज़ा भुट्टों की सी महक उठ रही थी। सामने के एक खैमे में एक लड़का रो रहा था और उसकी माँ उसे गालियाँ दे रही थी और उसका बाप पांव से चर्खी चलाता हुआ चकमाक पर ऊन कतरने की कैंची तेज़ कर रहा था "चुप हो जा शैतान की औलाद, नहीं तो यही कैंची तेरी छाती में भोंक दूंगा।"

लड़का रोते-रोते कहने लगा "शैतान की औलाद तू है अब्बा।"

बाप मुस्कुराने लगा और अपने अंगूठे पर फल की धार का अन्दाज़ा लगाने लगा। फिर उसने ज़ोर से चर्खी घुमाई और कैंची के एक फल को चकमाक पर रख दिया। शरारों की एक फुलझड़ी सी अन्धकार में छूटती गई.........

"खुदादाद !"

"कौन है—रावल ?"

"हां"

"क्या बात है रावल ?"

"भई आज खैमे से बाहर नहीं आओगे क्या? ऐसी अच्छी चांदनी खिली है।"

हम लोग खैमे का पर्दा बन्द किये रस्सी बट रहे थे। मैं और मरजाना सन के ख़ोशों को भिगो कर रस्सी में लगाते जाते थे। शमा ने रस्सी के एक सिरे को अपने पांव के अंगूठे में दबा रखा था। दूसरी ओर से खुदादाद बटता जा रहा था परन्तु क्या मजाल जो शमा के पांव में ज़रा भर कम्पन पैदा हो जाए। हां उसके गालों का रंग गहरा सुर्ख हो गया था और पलकें और बोझल होकर गिरी पड़ती थीं। वह उन्हें बार-बार सम्भालती परन्तु अब नज़र न मिला सकती थी। तीखी नाक के नीचे फूल की पंखड़ियों ऐसे होंट थोड़े से खुले हुए थे और उसका श्वास तेज़ था और वह कभी-कभी अपनी पतली सी सुर्ख ज़बान निकाल कर अपने होंट पर फेर लेती। उसकी यह अदा मुझे बहुत भाई।

रावल के बुलाने पर खुदादाद उठा और खैमे का पर्दा खोल कर

बाहर जा खड़ा हुआ। फिर उसने एक लम्बा सांस लिया जैसे खिली हुई चांदनी को सूंघ रहा हो। शमा इस प्रकार बैठी थी कि जब खैमे का पर्दा खुला तो चाँदनी का प्रवाह एक दम उसके मुखड़े से टकराया और फिर हवा से उछलता हुआ धान के खोशों पर से फिसलता हुआ खैमे के दूसरे कोने तक चला गया जहां वह बकरी बंधी थी। शमा का जैतूनी सौंदर्य श्वेत मरमर में बदल गया। उसकी आंखें झपक गई और मुझे जैसे उसकी बन्द पलकों के अन्दर काली पुतलियों में चांदनी की किरणें कांपती हुई नज़र आईं। चाँदनी, जवानी और कुछ शायद उन नज़रों का उपद्रव था कि उस समय मुझे शमा के मुख पर एक अनूठी सी सुन्दरता नज़र आई। दूसरे ही क्षण खुदादाद की आवाज़ ने यह भाव मिटा दिया। वह कह रहा था "शाहज़मां—आओ—बाहर आ जाओ—शमा—मरजाना!"

शमा अपने भाई की तोड़ेदार बन्दूक और मेरी 'ट्वेल्व-बोर' उठाए हुए बाहर निकली। मैंने पूछा तो बोली "तेरे अभिमान का इम्तहान लेना चाहती हूँ।"

बाहर रावल खड़ा था—छः फुट कद, नंगे पांव, घेरेदार शलवार जो केवल घुटनों तक आती थी। घुटनों के नीचे टाँगें बिल्कुल नंगी थीं और उन पर घावों के चिन्ह थे। सिर पर लम्बे-लम्बे बाल रख छोड़े थे और सिर पर उसने बगदादी चोर की तरह एक रूमाल बाँध रखा था। दाएं कान मे एक लोहे की बाली थी। वह खानाबदोश की अपेक्षा किसी फिल्म का हीरो मालूम होता था। वह मेरी ओर देख कर मुस्कुराया, फिर उसकी नज़रें शमा के चेहरे पर गड़ गईं।

रावल बोला "खुदादाद कहता है तुम्हारे पास अँग्रेज़ी बन्दूक है।"

"हां, यह देखो राही की बन्दूक!" शमा चहकी।

रावल उसे ध्यान से देखता रहा, फिर बोला "यह कैसी बन्दूक है? इसकी एक नाल में दनदाने हैं और दूसरी नाल बिल्कुल साफ़ है, हमारी तोड़ेदार बन्दूक की तरह।

मैंने कहा "दनदानेदार नाल में मैं बड़े शिकार के लिए गोली डालता हूं। सीधी नाल से तीतर का शिकार करता हूं—गोली वाला कारतूस है······यह छर्रेदार······देखो यह है।"

रावल बोला "अंग्रेज़ी राइफल अच्छी होती है मगर हमारी तोड़ेदार का मुक़ाबला नहीं कर सकती।"

शमा बोली "बन्दूक अच्छी या बुरी नहीं होती, यह तो जवान का हाथ होता है।"

रावल हँसने लगा। मुझे उसकी हँसी मिसरी की तरह मीठी मालूम हुई। मैंने कहा "जवान के हाथ भी देख लो, कौन रोकता है।"

रावल आगे बढ़ा। खुदादाद का चेहरा बिल्कुल गम्भीर था। रावल मेरे समीप आ रहा था। खुदादाद ने धीरे से कहा "शाहज़मां हमारा मेहमान है।"

रावल फिर पीछे हट गया।

खुदादाद ने कहा "वह देखो सामने, वह देवदार की बुम्बल (टहनी) हमारा निशाना है।"

चांदनी रात में देवदार की बुम्बल, एक सलीब की तरह आकाश की ओर उठी हुई थी।

शमा ने बन्दूक मेरे हाथ में थमा दी और कहा "तुम हमारे मेहमान हो, पहला हक तुम्हारा है।"

उसके स्वर में छिपे हुए व्यंग से मैं झल्ला उठा। मैंने निशाना बांध कर बन्दूक चलाई मगर मैं जानता था कि मैं चूक जाऊँगा। वह बुम्बल वहीं खड़ी थी।

खुदादाद ने अपनी नज़रों से एक बार उस बुम्बल को ध्यान से देखा और फिर बन्दूक सीधी करके लबलबी दबा दी—ठायें।

परन्तु बुम्बल वहीं खड़ी थी। रावल हँसने लगा।

अब रावल ने बड़ी शान से अपनी बन्दूक हाथ में ली और इस

प्रकार बन्दूक चलाई कि सामने देवदार की बुम्बल तो क्या यदि किसी काल्पनिक चिड़िया का पँख भी होता तो वह भी छिद जाता।

परन्तु बुम्बल वहीं खड़ी थी। एक सलीब की तरह आकाश की ओर उठी हुई।

शमा ने झल्ला कर बन्दूक रावल के हाथ से छीन ली और बोली "आज तुम्हें हुआ क्या है?" और यह कह कर उसने नाल में तोड़ा डाल कर भरा और फिर ठायें ...

बुम्बल गायब थी। शमा ने बन्दूक की नाल को अपने होंटों से लगा कर फूंका और फिर बन्दूक को रावल के हाथों में दे दिया। रावल के हाथ एक क्षण के लिए शमा की उंगलियों पर दृढ़ता से जम गये। फिर शमा ने तुरन्त हाथ छुड़ा लिया। बन्दूक ज़मीन पर जा गिरी। रावल हँस कर मुझ से बोला "बीनी (कलाई) पकड़ते हो जवान।"

"क्यों नहीं, लाओ हाथ।"

फिर हम बीनी पकड़ने लगे।

वे नहीं जानते थे कि मैं बीनी पकड़ने में कितना निपुण था। बहुत जल्द मैंने खुदादाद को मात दे दी। फिर रावल से जूझने लगा। बीनी छुड़ाते हुए मैंने उसे ऐसा झटका दिया कि वह दस गज़ परे जा गिरा और मरजाना ताली बजा कर हँसने लगी। शमा ने क्रोध में आकर मरजाना के मुँह पर थप्पड़ मारा और वह रोने लगी।

मैंने शमा से कहा "मरजाना ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

वह बोली "तुम चुप रहो जी, बड़े हिमायती बन कर आये हो। एक रात का मेहमान और अभी से ऐसी बातें करता है जैसे खाना-बदोशों का सरदार हो, एक रावल से बीनी क्या छुड़ा ली आफ़त आ गई।"

खुदादाद हँसने लगा। इतने में सामने के ख़ैमे में जो खानाबदोश कैंची तेज़ कर रहा था उसने अब चर्खी और चकमाक उठा कर अलग

रख दिये और दफ बजा कर गाने लगा। उसके बीवी और बच्चे भी उसके साथ मिल कर गाने लगे। हम सब लोग भी वहीं चले गये। रावल के ख़ैमे के लोग भी उठ कर वहां चले आये और फिर चौथे ख़ैमे वाले भी जो केवल एक बूढ़ा और बुढ़िया थे। अलाव में दो बड़े-बड़े सूखे मुढ जल रहे थे और शोलों का प्रतिबिम्ब हर चीज़ पर पड़ रहा था और पीछे बकरी का रबाब बज रहा था, हल्का मद्धम, मीठा और खानाबदोशों की आवाज़ें चाँदनी रात में घुलती हुई, गूंजती हुई क्षितिज तक फैलती जा रही थी। चांदनी का तूफ़ान, नशे का तूफ़ान और तारों की सुन्दर नौकायें झिल-मिल झिल-मिल करती हुई तैर रही थीं और अब शमा के पांव नाच रहे थे और उसका शरीर उसकी आत्मा में पिघल गया था और अब वह हमारे घेरे में, हमारे घेरे से बाहर, यहां-वहां, ज़मीन पर, आकाश पर हर जगह मालूम होती थी। उसकी आवाज़ धरती की आवाज़ थी, अजर, अमर, अजय। उसका नृत्य विश्व का नृत्य था, स्थायी, निरन्तर, अविरल। उसके केश उड़-उड़ कर उसके गालों पर पड़ रहे थे और जब नृत्य के दूसरे चक्कर में वह उन्हें झटक देती तो एक बिजली-सी कौंध जाती, अन्धकार, बिजली, स्वर और चक्कर—जैसे सातों आकाशों के सूर्य, चांद और तारे ठिठक गये थे और एक हेवले के रूप में धरती पर नृत्य कर रहे थे; जैसे आरम्भ और अंत, जीवन और मृत्यु, भगवान और मनुष्य एक ही शरीर में गडमड होकर किसी अनुभूति का आरम्भ कर रहे थे और नाच-नाच कर कह रहे थे—देखो, देखो यह है वह औरत, वह शमा, वह प्रकाश की लौ जो दया के मन्दिर में देवताओं और मनुष्यों को जन्म देती है। उनकी सभ्यता और संस्कृति को अमर बनाती है, उनकी छाती में नैतिकता और ज्ञान को उज्ज्वल करती है। आदिकाल से अंत काल तक, यह वही औरत है, वहशी, शोला, तूफ़ान, नृत्य करते हुए जीवन का केन्द्र!......

नृत्य और संगीत की यह महफ़िल सुबह तक जमी रहती यदि

मेरा मामू अल्लादाद खां आकर रंग में भंग न डाल देता। एकाएक वह उस महफ़िल में आकर चिल्लाने लगा "अबे हरामज़ादो खानाबदोशो, उठाओ यहां से अपना बोरिया-बिस्तर और निकल जाओ हमारे गांव से.....अभी, इसी वक्त, वरना....." शमा नाचते-नाचते एकदम बैठ गई और हांपते हुए अपने भाई की ओर देखने लगी। रावल और खुदादाद दोनों अल्लादाद की ओर बढ़े परन्तु उसके हाथ में पिस्तौल देख कर वहीं रुक गये।

रावल बोला "हम खानाबदोश हैं। हम किसी का दबदबा बर्दाश्त नहीं कर सकते। इस आकाश के नीचे जितनी ज़मीन है, हमारी है। हम—हमारा जहां जी चाहेगा रहेंगे। जब जी चाहेगा उठ कर चले जायेंगे।"

अल्लादाद खां ठिगने क़द और गठीले बदन का डाकू था। छोटी-छोटी मूँछें, छोटी-छोटी आंखें जो अपने गढ़ों में मशाल की तरह चमकती थीं। उसके शरीर से फुरती और चालाकी प्रकट होती थी और निर्दयता भी ....पिस्तौल उसने रावल के सीने पर तान रखा था। बोला "यह रंगपुर का गांव नहीं है। यहां हीजड़े नहीं बसते। यह अल्लादाद खां का गांव है। एक गुफा में दो शेर नहीं रह सकते। कल यहां से चुपचाप चले जाना वरना ख़ैमे तक जलवा दूंगा।"

मैंने क्रोध में आकर खुदादाद को पीछे ढकेल दिया और अल्लादाद के सामने खड़ा हो गया।

मैंने कहा "मामू, इन गरीब खानाबदोशों से क्यों लड़ते हो? अगर लड़ना है तो मेरे साथ लड़ो। रंगपुर वाले हीजड़े हैं तो आओ मैं मुक़ाबले के लिए तय्यार हूँ।"

वह मुझे देखकर हैरान रह गया 'अरे तू·········शाहज़मां ···· यहाँ क्या कर रहा है इन जंगलियों के खैमों में? अपने घर क्यों नहीं आया?"

फिर शमा और मरजाना की ओर देख कर मुस्कुराने लगा "अब

तो ये खैमे ज़रूर ही जलाने पड़ेंगे। गांव के सारे जवान मर मिटे इन खानाबदोश औरतों पर ···· ”

रावल आगे बढ़ा, अल्लादाद ने पिस्तौल आगे बढ़ा दिया। खुदादाद ने रावल को रोक लिया। फिर अत्यन्त कोमल स्वर में बोला “अल्लादाद खां! कल शाम को हम यहाँ से चले जायेंगे, बस इतनी मोहलत और दे दो।”

“अच्छा! कल शाम को ज़रूर चले जाइयो। अगर फिर मैंने तुम्हें यहाँ देखा तो गांव के कुत्तों से तुम्हें फड़वा डालूंगा।” फिर मेरी ओर देख कर बोला “घर चलते हो?”

मैंने इन्कार में सिर हिला दिया।

“कहाँ से आ रहे हो? लगान वसूल कर के? बटुआ तो आज बहुत भारी होगा!” उसकी तेज़ आंखें चमकने लगीं।

मैं चुप हो रहा। रावल और खुदादाद ने मेरी ओर देखा फिर अल्लादाद खां ने उन दोनों की ओर देखा “यह शाहज़माँ बड़ा होशियार छोंडा है” अल्लादाद ने व्यंग पूर्ण स्वर में कहा, “अच्छा तो मैं चलता हूँ सुबह मुझ से मिल कर जाइयो यहाँ से ·····”

रावल और खुदादाद दोनों अल्लादाद को कस्सी (नदी) के उस पार पहुँचाने गये और बहुत देर के बाद लौटे। वह अभी पलटे न थे कि मैंने अपनी तजवीज़ पक्की कर ली। मैंने अपना बटुआ उठा कर शमा के सामने फेंक दिया और उस से कहा “सुबह तुम से ले लूंगा।”

वह बटुआ देख कर मुस्कुराई। बोली “मैं इसे अपने पास नहीं रखती, यह तुम्हारा माल है। इस की हिफ़ाज़त करना तुम्हारा काम है।”

मैंने कहा “मैं तुम्हारा मेहमान हूँ।”

शमा ने कहा “मैंने तो तुम्हें नहीं बुलाया था।”

“डरती हो?”

उसने बटुआ मेरे हाथ में से छीन लिया। चमक कर बोली “मर्द

अपनी बन्दूक, अपने खैमे और अपनी औरत की खुद हिफ़ाज़त करता है लेकिन तुम मिट्टी के घरों में रहने वाले हीजड़े भला इन बातों को क्या जानो ..... "

मैंने दोनाली अपने सरहाने रख ली और घ्याल पर लेट गया "बके जाओ" मैंने कहा "मुझे तो नींद आ रही है' और मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं। बहुत देर के बाद रावल और खुदादाद अल्लादाद को पहुँचा कर लौटे और देर तक खैमे के बाहर कुछ चर्चा करते रहे। देखने में तो मैं सो रहा था लेकिन वास्तव में उनकी हरेक बात सुन रहा था। मेरा हाथ अपनी दोनाली पर था। वे दोनों शमा को बुरा-भला कह रहे थे और शमा कह रही थी कि अब वह कुछ नहीं कर सकती, वह वचन हार चुकी है। रावल उसे गालियाँ देने लगा और शमा उसे ...... फिर खुदादाद ने कहा "क्यों न हम उसे जान ही से मार डालें और जंगल में गाड़ दें ?" परन्तु शमा न मानी, उसने कहा "अल्लादाद का क्या भरोसा, वह कल को तुम्हें भी फांसी पर लटकवा देगा। भला कहीं खानाबदोश भी क़त्ल करते हैं ? चोरी डकैती तो खैर अलग बात है लेकिन क़त्ल तो खानाबदोशों ने आज तक नहीं किया। फिर क्या अपने खानदान को बट्टा लगाओगे ?" आख़िर रावल और खुदादाद को शमा की बात माननी पड़ी।

खुदादाद और शमा ने खैमे में आकर आग बुझा दी और घ्याल पर लेट गए। मरजाना पहले से ही सो गई थी। शमा उसके पास लेट गई और खुदादाद मेरे पास लेट गया। अब मैं शमा और खुदादाद के बीच में लेटा हुआ था। खैमे का दरवाज़ा किसी ने बन्द न किया था और पर्दा हवा के तेज़ झोंकों से कड़कड़ा रहा था और चांद की किरणें घ्याल पर फैलती चली आ रही थीं। "ज़ालिम" दरवाज़े पर चौकन्ना खड़ा था और नथने ऊंचे किये शायद किसी अनजाने दुश्मन को सूँघ रहा था। ज़रा सी आहट पर वह भौंकने लगता। मैं दम साधे जाग रहा था। एक ओर शमा थी तो दूसरी ओर खुदादाद।

खुदादाद शीघ्र ही सो गया और खर्राटे लेने लगा। ये खर्राटे दिखावे के न थे। मैंने करवट बदल कर शमा की ओर देखा। उसके चेहरे और उसके बिखरे हुए बालों के गिर्द चांदनी का हाला था और उसकी लम्बोतरी ठोढ़ी के नीचे उसका बायां हाथ था। वह मेरे इतनी निकट लेटी हुई थी कि मैं हाथ बढ़ा कर उसकी ठोढ़ी छू सकता था। उसकी ठोढ़ी को छू लेने, उसके गालों को चूम लेने और उसके सारे शरीर को अपने बाहुपाश में लेकर कुचल डालने का तूफ़ानी भाव मेरे हृदय में उठने लगा। मैं शरीर की आवाज़ न सुनना चाहता था इसलिए मैंने अपने कानों में उंगलियां डाल लीं परन्तु यह गूंज तो जैसे हृदय की तेज़ धड़कन और रक्त तक में बस गई थी और शरीर के अंग-अंग से एक ही आवाज़ आ रही थी—शमा को कुचल डालो, शमा को कुचल डालो .... मैं धीरे से उसके और निकट सरक गया और फिर मुड़कर खुदादाद की ओर देखने लगा। वह पूर्ववत गहरी निद्रा में था और खर्राटे ले रहा था। मैंने अपना हाथ शमा के बायें हाथ की उंगलियों पर रख दिया। कोई हिल-जुल न हुई। देर तक मेरा जलता हुआ गरम हाथ उसकी ठंडी बरफ़ ऐसी उंगलियों पर पड़ा रहा। फिर धीरे से मैंने उसकी ठोढ़ी को छूआ और मेरी रग-रग में लाखों शोले तड़पने लगे और तूफ़ानी लहरों के रेले उछल-उछल कर जीवन-तट से टकराने लगे। कानों में एक ही संगीत था, एक ही निरंतर गूंज – शमा को कुचल डालो, शमा को कुचल डालो। मैंने एक नज़र फिर खुदादाद पर डाली। फिर मरजाना की ओर देखा जो पूर्ववत दूसरी ओर मुंह किये सो रही थी। फिर मैं शमा के और भी निकट सरक गया। पयाल पर एक हल्की सी सरसराहट हुई। यह सरसराहट जो एक मोठी खुसर-पुसर थी, एक भेदपूर्ण संगीत था, प्रसन्नता की लहर थी और मैं उसके बहाव में तैरता हुआ शमा के बिल्कुल निकट चला गया। फिर मैंने अपने हाथ की उंगलियों को उसके हाथ की उंगलियों में डाल कर उन्हें ज़ोर से दबाया......जाग......जाग......ऐ शयनगृह की शमा।"

शमा जागी नहीं। उसकी आंखें पूर्ववत बन्द रहीं परन्तु मेरे हाथ की उंगलियों ने उसकी उंगलियों का फौलादी स्पर्श इस प्रकार महसूस किया कि यदि मैं पुरुष न होता तो पीड़ा-वश बिलबिला उठता। वह धीरे-धीरे मेरी उंगलियों को मरोड़ रही थी। चुपचाप, बिना हिले-जुले, बिना आंखें खोले—मुझ से कोई बात किये बिना ही वह मेरे हाथ की उंगलियों को एक फौलादी शिकंजे में कस कर मरोड़ रही थी और मैं अपनी उंगलियां छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए सोच रहा था कि उन उंगलियों में इतना बल और शक्ति कहाँ से आ गई थी। इस फूल के से शरीर में फौलाद की सख़्ती कहाँ छिपी हुई थी। बड़े प्रयत्न के बाद भी मैं अपना हाथ छुड़ाने में सफल न हो सका। आख़िर जब वह मेरा हाथ तोड़ने लगी तो मैं दूसरी ओर करवट बदलने पर विवश हो गया। अब मेरी पीठ उसकी तरफ़ थी परन्तु मेरा हाथ अब भी उसके हाथ की उंगलियों की जकड़ में था।

शमा ने हौले से कहा "बीनी पकड़ोगे।"

मैंने कहा "तुम औरत नहीं हो, चुड़ैल हो।"

वह धीमे से हँसी, बोली "और शिकंजा।"

मैंने कहा "देवनी की औलाद हो, सूअरनी।"

उसने कहा "माहिया सुनोगे।"

मैंने कहा "मेरा हाथ छोड़ दो, तुम्हारी सात पुश्तों पर लानत।"

वह बोली "मुझे माहिया से इश्क है। जब घाटियों में इसकी आवाज़ गूंजती है . हा, हा, हा।"

"चुप हो जाओ" मैंने कहा "खुदा के लिये, अगर कोई सुन लेगा तो—"

"मैं किसी से डरती नहीं हूँ ...... अच्छा तो माहिया सुनो।" और वह धीमे धीमे-सुरों में गाने लगी। उसकी आवाज़ में हँसी और चंचलता के सुर मिले हुए थे।

बाजार बिकेंदी पट्टी……बाजार बिकेंदी पट्टी
नड़ी मार गई प्लेटी
नढ़ा कमज़ोर वे—जी वे जानी

"हरामज़ादी" मैंने क्रोध से कहा और उसने मेरे हाथ की उंगलियों को एक बल और दे दिया। कहने लगी "शमा खानाबदोश लड़की है। वह किसी मिट्टी के घर में रहने वाली किसी किसान की लड़की नहीं जो नम्बरदार के लड़के को देख कर उस पर आशिक हो जायेगी और अपनी ज़िन्दगी की सारी दौलत चुपचाप उसके हवाले कर देगी। तुम सभ्य लोग जंगलियों की सभ्यता क्या जानो ।"

यह कह कर उसने मेरी उंगलियों को और भी शिकंजे में कसा। उफ़ ! अब तो हाथ टूटने को था। एकाएक मुझे लगा जैसे मैं खेमे में नहीं बल्कि किसी जंगल में लेटा हुआ हूँ और कोई जंगली जानवर मेरा हाथ चबा रहा है और अगर तुरन्त मैंने अपना हाथ न छुड़ाया तो थोड़े समय के बाद उस जंगल में मेरी हड्डियां चमकती हुई नज़र आयेंगी। दर्द बढ़ रहा था। शायद यह बांह टूट जायेगी … मैं तड़फ उठा और फिर जो मैंने ज़ोर लगाया तो हाथ उसकी जकड़ से निकल कर तड़ाख से उसके मुँह पर जा गिरा। उसके होंटों से एक दबी सी चीख़ निकली और वह एकदम मौन हो गई। एकाएक खुदादाद हड़बड़ा कर उठ बैठा। शमा ने भी झूठ-मूठ जाग उठने का बहाना किया।

"राही, क्या है ?"

"कुछ नहीं …" मैंने उत्तर दिया।

"शायद मैंने एक चीख़ सुनी थी" खुदादाद बोला।

"शायद बेचारा राही डर गया था। क्या बहुत बुरा सपना था राही ?" शमा ने फिर कहा।

मेरा खून खौल रहा था परन्तु मैं चुप हो रहा।

"क्या हुआ ?" एकाएक मरजाना ने आँखें खोलकर आश्चर्य से पूछा।

"कुछ नहीं, बेचारा परदेशी डर गया था। कुछ सपने बड़े भयानक होते हैं" शमा ने गम्भीर मुद्रा धारण करते हुए कहा।

"सो जाओ" खुदादाद ने करवट बदल कर कहा और स्वयं सो गया।

देर तक चुप्पी रही। फिर शमा धीरे से अपनी जगह से उठी और ख़ैमे का पर्दा उठा कर बाहर चली गई। थोड़ी देर के बाद मैंने भी अपनी बन्दूक उठाई और ख़ैमे के बाहर आ गया। चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई थी और शमा नदी के किनारे बैठी मुँह धो रही थी। मैं उसके निकट जा पहुँचा और बोला "भला आधी रात के वक्त मुँह धोने से क्या होगा?"

उसने मुड़ कर मेरी ओर देखा और मैंने देखा कि उसके दांतों से रक्त बह रहा था और होंटों के कोने से भी रक्त रिस रहा था। शायद मेरा हाथ यहीं पड़ा था। मैं उसके पास ही बैठ गया और हाथों के प्याले में पानी भर-भर कर उसके होंटों के निकट ले जाने लगा। थोड़ी देर के बाद रक्त बहना बन्द हो गया और होंटों के किनारों पर लाली की दो छोटी-छोटी रेखायें-सी बन गईं। याकूत की रगें जिन्हें चूमने के लिए मेरे होंट बेकरार हो कर फड़कने लगे परन्तु मैंने उन्हें अपने दांतों तले दबा लिया और हैरान हो कर देवदार की उस बुम्बल को ढूंढने लगा जो अब वहां न थी। नज़रें अभी तक उस बुम्बल को ढूंढ रही थीं जो बन्दूक की ठायें से मर चुकी थी परन्तु अब वह शोर न था, वह ठायें न थी, रावल की भारी आवाज़ न थी, डफ़ का संगीत न था, शमा का नृत्य न था। अब शमा चुपचाप मेरे सामने खड़ी थी और उसकी आंखों की अनुभूतिपूर्ण गहराइयों में चांद चमक रहा था और वादी का संगीत समाप्त हो गया था और उसकी चुप्पी लौट आई थी और हम दोनों उस चुप्पी के मध्य में खड़े थे और एक दूसरे की ओर देख रहे थे। क्या देख रहे थे? क्या पहचान रहे थे? क्या टटोल रहे थे? जैसे दो आत्मायें आगे बढ़ रही

हों और अपनी कोमल अदृश्य उंगलियों से उन आंखों, उन पलकों, उन गालों, उस ठोडी को पहचान रही हों। मैं जानती हूँ, मैं जानती हूँ तुझे। हम एक ही हरकत की ताल हैं, एक ही लय की गूंज हैं, एक ही सचाई की मूर्ति हैं, आज लाखों वर्ष के बाद हम मिले हैं—दो अणु, दो आत्मायें, दो शरारे जो इस महान् हेवले के गर्भ से निकल भागे हैं जो सारे विश्व का स्रोत है, और आज तक अपनी छोटी-सी पहनाई के गिर्द घूमते रहे हैं और अब एकाएक उसी तरह चलते-चलते, घूमते-घूमते, चक्कर काटते काटते एक दूसरे के सामने आ गये हैं। दो आवारा सितारे, एक क्षण के लिए, केवल एक क्षण के लिए जो अजर और अमर हैं, एक दूसरे के सामने आ गए हैं, केवल एक क्षण के लिए, जो मुझ में, तुझ में, अपने आप में बिल्कुल पूर्ण है।

दूसरे क्षण में वह फिर मेरे लिए अपरिचित थी। उसने ख़ैमे की ओर क़दम बढ़ाये और वह क्षण समाप्त हो गया। शरारा बुझ गया। चुप्पी भाग गई और रात का शोर लौट आया। अब देवदार के वृक्षों में वायु कराह रही थी। जंगल में गीदड़ चिल्ला रहे थे। नदी क़हक़हे लगा रही थी, चांद हँसता हुआ मालूम होता था। वायुमण्डल में शोर-सा मचा हुआ था यहां तक कि शमा के कदमों की आहट और ख़ानाबदोशों के श्वास और ख़ैमों के पर्दों की सरसराहट भी सुनाई दे रही थी। उस पहले क्षण में हर चीज़ बिल्कुल मौन थी और अब दूसरे क्षण में हर चीज़ बोल रही थी, चीख़ रही थी और मस्तिष्क में बरमे की तरह घुसती चली जा रही थी। बस यही होता है! कभी एक क्षण दूसरे क्षण की तरह नहीं होता, कभी नहीं होता। अब जीवन का क्रम, संतुलन इस प्रकार है, दूसरे क्षण में इस प्रकार नहीं है ... इस प्रकार क्यों नहीं .....क्यों नहीं ?

शमा खैमे का पर्दा उठा कर भीतर चली गई। मेरे पांव खैमे के बाहर रुक गये। मैं वहीं 'जालिम' के पास बैठ गया। जालिम अपनी गरम-गरम ज़बान से मेरे हाथ की पुश्त चाटने लगा और मैं उसे थप-

थपाने लगा और उसके खुरदरे बालों में अपनी ऊंगलियाँ डालकर उसकी पीठ को सहलाने लगा। शायद मैं उसकी त्वचा को नहीं अपनी त्वचा को सहला रहा था। अपने आप को थपक रहा था क्योंकि मुझे बहुत शीघ्र ही नींद आगई, और मैं वहीं पत्थर पर, तारों की शीतल छाया में, सो गया और जब जागा तो तारे अदृश्य हो चुके थे और आकाश पर ऊषा झांक रही थी और शमा सामने नदी में से निकल कर मेरे खच्चर पर लकड़ियों का गट्ठा लादे चली आ रही थी। वह मेरे पास आकर रुक गई। उसने लकड़ियों का गट्ठा खच्चर से उतार कर खेमे के सामने डाल दिया और मुड़ कर भीतर जाने को थी कि मैंने उसे रोककर कहा "लाओ, मेरा बटुवा मुझे दे दो, मैं जा रहा हूँ।"

यह कह कर मैंने खच्चर की वाग अपने हाथ में ले ली।

"कैसा बटुआ ?" शमा ने गम्भीरता-पूर्वक पूछा ।

"वही जो मैंने रात को तुम्हें दिया था।"

"रात को दिया था ? मुझे ? क्या कह रहे हो ?"

"यह मज़ाक़ का वक्त नहीं" मैंने झल्ला कर कहा "बटुआ निकालो, मुझे जल्दी जाना है।"

खुदादाद और रावल सामने से इधर आ रहे थे ।

खुदादाद बोला "किस बटुए की बात कर रहे हो ?" उसके स्वर में मज़ाक़ की पुट थी ।

मैंने चिल्ला कर कहा "मैंने इसे बटुआ दिया था। रात को मरजाना के सामने, कहां है मरजाना, बुलाओ उसे ....."

शमा बोली "मरजाना यहां नहीं है। वह जंगल से अभी तक नहीं लौटी। लकड़ियां चुनने गई है।"

"बटुआ तुमने इसे क्यों दिया था ?" रावल ने मुस्कुरा कर पूछा।

"मैंने सोचा इसके पास सुरक्षित रहेगा।"

"अच्छा तो तुम हमें ठग समझते हो" रावल चिंघाड़ा 'रात भर हमने तुम्हें पनाह दी। तुम्हें डाकुओं के गांव में कत्ल होने से बचाया

और अब तुम हमें चोर कहते हो।"

शमा ने रावल के हाथ से बन्दूक छीन ली और मुझ से बोली "अभी चले जाओ, इसी समय ..वरना..."

मैंने शमा की ओर देखा। रावल की ओर देखा, खुदादाद की ओर देखा और फिर खच्चर को नदी के तट पर डाल दिया।

आज मार्ग अकेला था। मैं अकेला था। मेरे आस-पास हर वस्तु अकेली थी। बटुए के चले जाने का भी दुःख न था, फिर किस वस्तु के खो जाने का दुख था ? दिल दुखित था। मस्तिष्क में एक अज्ञात उलझन थी जिसका वर्णन तक न हो सकता था। शमा पर, खानाबदोशों पर, अपने आप पर, खच्चर पर, किसी पर क्रोध न था। बस एक हल्की सी, कभी समाप्त न होने वाली उदासी चारों ओर छाई हुई थी और खच्चर धीरे-धीरे चला जा रहा था। एक खरगोश सामने से रास्ता काट कर तेज़ी से निकल गया। एक वृक्ष के नीचे मुझे लोमड़ी की समूरदार दुम भी नज़र आई परन्तु मेरा हाथ बन्दूक पर न गया। एक स्थान पर वह सूखा वृक्ष खड़ा था जहाँ से पगडंडी अपना रुख बदलती थी परन्तु आज मुझे यह भी मालूम न हुआ कि पगडंडी ने अपना रुख बदला है। यही लग रहा था जैसे यह पगडंडी इसी प्रकार एक ही रुख पर चली जा रही है। यह मार्ग बहुत लम्बा है, यह मार्ग अनिश्चित है .. मैं ऊंघने लगा।

सहसा मैं जाग उठा। किसी ने ठहोका देकर मुझे जगा दिया था "राही, उतरो" शमा बोली।

मैं खच्चर से उतर पड़ा और हम दोनों साथ साथ चलने लगे। मैंने उससे यह नहीं पूछा कि तुम क्यों आई हो ? किधर जा रही हो ? बस हम दोनों साथ-साथ चलने लगे। काव के एक झुंड के निकट पहुँच कर हम आप ही आप रुक गये। उस झुंड पर अंगूर की जंगली बेलें फैली हुई थीं और नीचे बनफ्शे के फूल प्रेम के चुम्बनों की तरह बिखरे हुए थे। यहां से दोनों वादियों का सुन्दर दृश्य दिखाई दे रहा था,

एक ओर रंगपुर की घाटी थी दूसरी ओर चमनकोट की। बीच में दोनों घाटियाँ मिल जाती थीं और बीचों बीच नदी का पानी चांदी की रेखा सा चमक रहा था।

मैंने शमा की ओर देखा।

उस ने कमीज़ के भीतर हाथ डाला और बटुआ निकाल कर मेरे हाथ में दे दिया।

मैं आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगा और मेरी नज़रें उसके लख्मी होंटों पर जम गईं। वह याक़ूती रंग, कोमल बारीक किनारे, बनफशे की पत्तियों का झुकाव ···· मैं उसके चेहरे पर झुक गया।

वह मुंह मोड़ कर धीरे से कहने लगी "मुझ से शादी करोगे ?"

"शादी ?" मैंने पूछा।

वह चुपचाप मेरी ओर देखती रही।

"शादी" मैंने फिर कहा "तुम······" मैं सोचने लगा···

"तुम हमारे गांव चलो—तो फिर······मैं तुम से शादी कर लूंगा।"

"तुम्हारे गांव ?"

"हां हां, वह रहा सामने रंगपुर ·····"

"परन्तु मैं गांव जाकर क्या करूंगी ?" वह हैरान हो कर बोली।

"मैं नम्बरदार का बेटा हूँ" मैंने अभिमान से कहा "वहां मेरा घर है। ज़मीन है, खेत है, नौकर-चाकर, इज़्ज़त, दौलत और······ और" मैं रुक गया।

वह बोली "मैं चाहती थी तुम मेरे साथ चलो।"

"तुम्हारे साथ ! कहां ?"

"धरणकोट में मेरा कबीला है—मेरी मां का कबीला जिसे मेरे बाप ने छोड़ दिया था। धरणकोट में आजकल भी बरफ़ होगी। चारों तरफ सफ़ेद सफ़ेद बरफ़ ··"

शमा की वहशी आंखें चमकने लगीं। उसने दृढ़ता से मेरा हाथ

पकड़ लिया और बोली "हम दोनों वहां एक खैमे में रहेंगे। तुम्हारी अंग्रेज़ी बन्दूक बहुत अच्छा शिकार करेगी .....तुम हमारे कबीले के सरदार होगे। रात को मैं दफ़ पर नाचूंगी, तुम ने मेरा नाच देखा है ना....." उसने अपनी बांह झटक दी।

मैंने कल्पना में उस कबीले को देखा। चारों ओर पड़ी हुई बरफ़ को देखा, दफ़ को देखा, मैले-कुचैले खैमे को देखा, उस बिस्तर को देखा जिससे पुराने ध्याल की बू आती थी और मेरे मुँह से निकल गया......"लेकिन शमा ! मेरे खेत, मेरा घर, मेरी दौलत, वह सारा सामान, वे गाड़ियाँ, वह बरादरी .....उनके बिना मैं कैसे ज़िन्दा रह सकूंगा ?"

शमा ने बड़े सादेपन से कहा "ज़िन्दा रहने के लिए क्या यह खुली ज़मीन और यह खुला आसमान काफी नहीं ? . ...एक खैमा हो, एक बन्दूक और......और..... क्या यह काफ़ी नहीं ?"

"तुम समझती नहीं हो .... तुम .....मैं तुम्हें कैसे बताऊं कि तुम खानाबदोश हो......"

एकाएक उसकी आंखों का प्रकाश मर गया। वह चमक जाती रही। उसने धीरे से मेरा हाथ छोड़ दिया। फिर रुक-रुक कर बोली : "मैंने तुम्हें गलत समझा था, तुम वह आदमी नहीं हो..."

"कौनसा आदमी ?"

"जाने दो......तुम नहीं समझोगे।"

"मुझे बहुत दुख है .... " मैंने कहना शुरू किया। परन्तु शमा ने मुझे बीच ही में टोक दिया और बोली "अब मैं धरणकोट जाना चाहती हूँ......अब मैं अपने भाई के पास न जाऊँगी, अब रावल... मेरा मुँह न देख सकेगा, आज से मरजाना मेरे लिए मर गई क्या तू यह खबर मुझे दे देगा ? राही, मेरा रास्ता बहुत लम्बा है।" रास्ता बहुत लम्बा है और उसकी कोई मंज़िल नहीं, मैं सोचने लगा। लाखों वर्ष के बाद दो सितारे एक क्षण के लिए एक दूसरे के सामने आते हैं

और दूसरे क्षण में अलग हो कर चक्कर काटने लगते हैं...एक क्षण... एक दूसरा क्षण......दोनों में सात समुद्रों का अन्तर है और सात विश्वों का भेद—एक क्षण में मानव का जंगल से नाता है दूसरे क्षण में यह नाता टूट चुका है, सदैव के लिए......"

"शमा" मैंने धीमे से कहा "कभी एक क्षण दूसरे क्षण की तरह नहीं होता।"

"क्या कहते हो तुम ?" उसकी पुतलियां हैरान थीं।

"......जाने दो, तुम नहीं समझोगी......"

मैंने खच्चर की लगाम उसके हाथ में थमा दी। उसने अपने ज़ख़्मी होंटों के किनारों पर ज़बान फेर कर क्षण भर के लिए मेरी ओर देखा फिर उचक कर खच्चर पर सवार हो गई और फिर मेरी ओर देखे बिना बोली "अच्छा, खुदा हाफ़िज़" और फिर मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह खच्चर को दौड़ाती हुई धरणकोट के रास्ते पर चली गई।

मैं देर तक उस दोराहे पर खड़ा रहा—वह दोराहा जिसका एक मार्ग शमा के क़बीले की ओर जाता था—वह दोराहा जिसका दूसरा मार्ग मेरे गांव की ओर जाता था। मैंने दो क़दम धरणकोट के रास्ते की ओर बढ़ाये, परन्तु फिर पलट कर धीरे-धीरे अपने गांव की ओर चलने लगा।